THE FREE INDOLOGICAL COLLECTION

WWW.SANSKRITDOCUMENTS.ORG/TFIC

FAIR USE DECLARATION

This book is sourced from another online repository and provided to you at this site under the TFIC collection. It is provided under commonly held Fair Use guidelines for individual educational or research use. We believe that the book is in the public domain and public dissemination was the intent of the original repository. We applaud and support their work wholeheartedly and only provide this version of this book at this site to make it available to even more readers. We believe that cataloging plays a big part in finding valuable books and try to facilitate that, through our TFIC group efforts. In some cases, the original sources are no longer online or are very hard to access, or marked up in or provided in Indian languages, rather than the more widely used English language. TFIC tries to address these needs too. Our intent is to aid all these repositories and digitization projects and is in no way to undercut them. For more information about our mission and our fair use guidelines, please visit our website.

Note that we provide this book and others because, to the best of our knowledge, they are in the public domain, in our jurisdiction. However, before downloading and using it, you must verify that it is legal for you, in your jurisdiction, to access and use this copy of the book. Please do not download this book in error. We may not be held responsible for any copyright or other legal violations. Placing this notice in the front of every book, serves to both alert you, and to relieve us of any responsibility.

If you are the intellectual property owner of this or any other book in our collection, please email us, if you have any objections to how we present or provide this book here, or to our providing this book at all. We shall work with you immediately.

-The TFIC Team.

श्रीमद्भगवद्धरषेण भूतबलिपुष्पदन्ताचार्येभ्यो नमः ।

सिद्धांत-सूत्र समन्वय

[षट्खण्डागम-सिद्धान्त रहस्य समझने की तालिका]

ग्रन्थ-रचयिता—
विद्यावारिधि, वादीभकेसरी, न्यायालङ्कार, धर्मवीर
श्री० पं० मक्खनलालजी शास्त्री 'तिलक'
मोरेना (ग्वालियर स्टेट)

श्रीः

सिद्धांत सूत्र समन्वय

श्रीमान सेठ वंशीलाल गङ्गाराम,
काशलीवाल, नांदगांव।

तथा

श्रीमान सेठ गुलाबचन्द खेमचन्दशाह,
सांगली के प्रदत्त द्रव्य द्वारा मुद्रित।

सम्पादक--
श्रीमान पं० रामप्रसाद जी शास्त्री, बम्बई।

प्रथमबार
५००

वीर सं० २४७३

मूल्य
स्वाध्याय

प्रकाशक—

दिगम्बर जैन पञ्चायत बम्बई,

[जुहारमल मूलचन्द, मक्खनचन्द हुकमचन्द द्वारा]

मुद्रक—

अजितकुमार शास्त्री,

प्रोप्रा:-अकलङ्क प्रेस मुलतान शहर

प्रस्तावना-

अधिकार और उद्धार

इस षटखण्डागम सिद्धान्त शास्त्रको परमागम कहा जाता है, गोमट्टसार आदि अनेक शास्त्रों में इस षटखण्डागम का उल्लेख परमागम के नाम से ही किया गया है। यह सिद्धांत शास्त्र अंगैकदेशज्ञाता आचार्यों द्वारा रचा गया है अतः अन्य शास्त्रों से यह अपनी विशिष्टता एवं असाधारणता रखता है। इसी लिये इसके पढ़ने पढ़ानेका अधिकार गृहस्थोंको नहीं है, किन्तु वीतराग मुनिगण ही इसके पढ़ने के अधिकारी हैं। यह बात अनेक शास्त्रों में स्पष्ट की गई है। गृहस्थों को तो विशेष रूपसे प्रथमानुयोग एवं चरणानुयोगके शास्त्र और श्रावकाचार ग्रन्थों का स्वाध्याय करना चाहिये, उनका समधिक उपयोग और कल्याण उन्हींसे हो सकता है। हमने इस सम्बन्ध में एक छोटा सा ट्रैक्ट भी "सिद्धान्तशास्त्र और उनके अध्ययन का अधिकार" इस नाम से लिखा है जो छप भी चुका है, उसमें अनेक प्रमाणों से यह सिद्ध किया गया है कि गृहस्थों को इस सिद्धान्तशास्त्र के पढ़ने का अधिकार नहीं है। उसी सम्बन्ध में एक विस्तृत ट्रैक्ट भी हम

लिखना चाहते थे, सामग्री का संग्रह भी हमने किया था परन्तु उसका उपयोग न देखकर उसमें शक्ति व्यय करना फिर व्यर्थ समझा।

हमारी यह इच्छा अवश्य थी कि इन ग्रन्थोंका जीर्णोद्धार हो, और उनकी हस्तलिखित प्रतियां मुख्य मुख्य स्थानों में सुरक्षित रक्खी जांय। परन्तु 'वह मुद्रित कराये जाकर उनकी बिक्री की जांय' हम इसके सर्वथा विरोधी हैं। जब तक परमागम-सिद्धांत शास्त्र ताडपत्रों में लिखे हुये मूडबिद्री में विराजमान थे, तब तक उनका आदर, विनय भक्ति और महत्व तथा उनके दर्शन की अभिलाषा समाज के प्रत्येक व्यक्ति में समधिक पाई जाती थी, परन्तु जब से उनका मुद्रण होकर उनकी बिक्री हुई है तब से उनका आदर विनय भक्ति और महत्व उतना नहीं रहा है, प्रत्युत ग्रन्थाशय के विपरीत साधनाओं का साधन वह परमागम बना लिया गया है, इसलिये आज भलेही उसका प्रचार हुआ है परन्तु लाभ और हित के स्थान में हानि ही अभी तक अधिक प्रतीत हुई है। जैसा कि वर्तमान विवाद और आन्दोलन से प्रसिद्ध है।

हमारे तीन ट्रैक्ट

सिद्धांतशास्त्र में सिद्धांत विपरीत समावेश देखकर हमें ट्रैक्ट लिखने पड़े हैं। एक तो वह जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। दूसरा वह जो "दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण (प्रथम-भाग)" के नाम से बम्बई की दिगम्बर जैन पंचायत द्वारा छपा कर प्रसिद्ध किया गया है। जिसमें द्रव्यस्त्रीमुक्ति, सवस्त्रमुक्ति

और केशजी कवलाहार इन तीनों बातोंका सप्रमाण एवं-युक्तियुक्त खण्डन है। और तीसरा ट्रैक्ट यह मन्थरूप में पाठकों के सामने है।

सिद्धांतशास्त्र का अवलोकन

बहुत समय पहले जब हम जैनबिद्री (श्रवण बेलगोला) होते हुए मूडबिद्री गये थे तब वहां के पूज्य भट्टारक महोदय जी ने हमें बड़े स्नेह और आदर के साथ उन ताड़पत्रों में लिखे हुए सिद्धांत शास्त्रों के दर्शन कराये थे। कपूर दीपकों से उनकी आरती की गई थी। उस समय हमें बहुत ही आनन्द आया था और उनके दर्शनों से हमने रत्नों की प्रतिमाओं के दर्शन के समान ही अपने को सौभाग्यशाली समझा था। फिर आज से कई वर्ष पहिले जब परम पूज्य आचार्य शांतिसागर जी महाराज ने अपने समस्त शिष्य मुनि संघ सहित बारामती में चातुर्मास किया था तब स्वर्गीय धर्मवीर दानवीर सेठ राव जी सखाराम दोशी के साथ हम भी महाराज और उनके संघ दर्शन के लिये वहां गये थे। उस समय परम पूज्य आचार्य महाराज ने सिद्धांत शास्त्र को सुनाने का आदेश हमें दिया था। तब करीब पौन माह रहकर महाराज और संघ के समक्ष हस्त लिखित मूल प्रति पर से (उस समय (सिद्धांत शास्त्र मुद्रित नहीं हुये थे अतः उनका हिन्दी अर्थ भी अनुवादित नहीं था) प्रतिदिन प्रातः और मध्यान्ह में करीब १०-१२ पत्रों का अर्थ और आशय हम महाराज के समक्ष निवेदन करते थे। वह ग्रन्थाशय सुनाना हमारा परम गुरु के समक्ष एक

शिष्य के नाते क्षयोपशम की परीक्षा देना था। विशेष कठिन स्थल पर जहां हम रुककर पंक्ति का अर्थ विचारते थे वहां कुशाग्रबुद्धि, सिद्धांत रहस्यज्ञ आचार्य महाराज स्वयं उस प्रकरण गत भाव का स्पष्टीकरण करते थे। वह वाचन और भी कुछ समय तक चलता परन्तु मुनि विहार में रुकावट आ जाने से हैदराबाद निजामस्टेट) के धर्म खाते के मिनिष्टर से मिलने के लिये जाने वाले दक्षिण प्रांतीय जैन डेप्युटेशन में हमें भी जाना पड़ा अतः वह सिद्धांत वाचन हमारा वहीं रुक गया। अस्तु।

जब गृहस्थों को सिद्धांत शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं तब यह वाचन कैसा ? ऐसी शङ्का का उठना सहज है और वह बात समाचार पत्रों द्वारा उठाई भी गई है। और यह किसी अंश में ठीक भी कही जा सकती है। परन्तु इस सम्बन्ध में हमारा कहना यह है कि हमारा वाचन हमारा स्वतन्त्र स्वाध्याय या पठन पाठन नहीं था, किन्तु परम गुरु आचार्य महाराज के आदेश का पालन मात्र था। जिसे एक अपवाद या विशेष परिस्थिति कहा जा सकता है। सर्व साधारण लोग अन्य शास्त्रों के समान प्रतिदिन के स्वाध्याय में सिद्धांत शास्त्र को भी रख लेते हैं अथवा शास्त्र सभा में उसका प्रवचन करते हैं यह सब पठन पाठन कहलाता है ऐसा पठन पाठन सिद्धांत शास्त्र का गृहस्थों के अधिकार से उसी प्रकार निषिद्ध है जिस प्रकार कि सर्व साधारण के समक्ष खुले रूप में क्षुल्लक को केशलुंचन अथवा लंगोटी हटाकर नग्न रहने का निषेध है।

परन्तु वह अपवाद तो दूसरी बात थी परमगुरु का आज्ञा—पालन मात्र था अब तो हमको इस षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र का पर्याप्त अवलोकन एवं मनन करना पड़ा है। यह विशेष परिस्थिति पहली परिस्थिति से सर्वथा विभिन्न है। यह स्वतन्त्र अवलोकन अवश्य है, फिर भी दिगम्बरत्व के एवं सिद्धांत के घातक समावेशों एवं वैसी समझों को दूर करने के लिये हमें बिना इच्छा के भी उन सिद्धांत शास्त्रों का अवलोकन करना पड़ा है। अन्यथा परमागम के अध्ययन की हमारी अभिलाषा नहीं है अपना क्षयोपशम दृढ़ श्रद्धिक एवं सद्भावना पूर्ण होना चाहिये फिर बिना सब ग्रन्थों के अध्ययन के भी समधिक बोध एवं परिज्ञान किया जा सकता है। अध्ययन तो एक निमित्त मात्र है ऐसी हमारी धारणा है। हमने यह भी अनुभव किया है कि सिद्धांत शास्त्र बहुत गम्भीर है उनमें एक विषय पर अनेक कोटियां प्रश्नोत्तर रूप में उठाई गई हैं उन सबों के परिणाम तक नहीं पहुंच कर अनेक विद्वान एवं हिन्दी भाषा भाषी मध्य की कोटियों तक ही वस्तुस्थिति समझ लेते हैं। उस प्रकार का दुरुपयोग भी उनकी पूर्ण जानकारी के बिना हो जाता है। अतः अनधिकृत विषय में अधिकार करना हित कारक नहीं है। मर्यादित नीति और प्रवृत्ति ही उपादेय एवं कल्याणकारी होती है। इस बात पर समाज को ध्यान देना चाहिये।

—बुद्धि का सदुपयोग—

महर्षियों ने भिन्न २ अनेक शास्त्रों की रचना एक एक विषय

को लेकर की है। प्रतिपाद्य विषय बहुत हैं और वे भिन्न २ शास्त्रों में वर्णित हैं। हमने समस्त शास्त्रों को देखा भी नहीं है। फिर तपः प्रभाव से उत्पन्न निर्मल सूक्ष्म क्षयोपशम के धारी महर्षियों के द्वारा रचे हुये शास्त्रों का प्रतिपाद्य विषय अत्यन्त गहन और गम्भीर है, और हमारी जानकारी बहुत छोटी और स्थूल है। ऐसी अवस्था में हमारा कर्तव्य है कि हम उन शास्त्रों के रहस्य को समझने में अपनी बुद्धि को उन शास्त्रों के वाक्य और पदों की ओर ही लगावें। अर्थात् ग्रन्थाशय के अनुसार ही बुद्धि का झुकाव हमें करना चाहिये। इसके विपरीत अपनी बुद्धि की ओर उन शास्त्रों के पद-वाक्यों को कभी नहीं खींचना चाहिये। हमारी बुद्धि में जो जंचा है वही ठीक है ऐसा समझ कर उन शास्त्रों के आशय को अपनी समझ के अनुसार लगाने का प्रयत्न कभी नहीं करना चाहिये। यही बुद्धि का सदुपयोग है।

जब हम इस बात का अनुभव करते हैं कि जिन भगवत्कुन्द-कुन्द स्वामी का स्थान वर्तमान में सर्वोपरि माना जाता है। जिन की आम्नाय के आधार पर दिगम्बर जैन धर्म का वर्तमान अभ्युदय माना जाता है जैसा कि प्रतिदिन शास्त्र प्रवचन में बोला जाता है—

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोस्तु मंगलम्॥

ऐसे महान दिग्गज आचार्य शिरोमणि भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी अङ्ग के एक देश ज्ञाता भी नहीं थे। ऐसी अवस्था में हमारा ज्ञान

किस गणना में आ सकता है? फिर भी हम लोग अपने पाण्डित्य का घमण्ड करें और जनता के समक्ष वीरवाणी अथवा वीर उपदेश कहकर अपनी समझ के अनुसार ऐसा इतिहास उपस्थित करें जो शास्त्रों के आशय से सर्वथा विपरीत है तो वह वास्तव में विद्वत्ता नहीं है, और न ग्राह्य है। किन्तु अपनी तुच्छ बुद्धि का केवल दुरुपयोग एवं जनता का प्रतारण मात्र है।

आजकल समाज में कतिपय संस्थायें एवं विद्वान ऐसे भी हैं जो अपनी समझ के अनुसार आनुमानिक (अन्दाजिया) इतिहास लिखकर ग्रन्थ कर्ता-आचार्यों के समय आदि का निर्णय देने और आगे पीछे के आचार्यों में किन्हीं को प्रामाणिक किन्हीं को अप्रामाणिक ठहराने में ही लगे हुए हैं। इस प्रकार की कल्पना पूर्ण खोज को वे लोग अपनी समझ से एक बड़ा आविष्कार समझते हैं।

इसी प्रकार आज कल यह पद्धति भी चल पड़ी है कि केवल १०० पृष्ठ का तो मूल एवं सटीक ग्रंथ है, उसके साथ १५० पृष्ठों की भूमिका जोड़कर उसे प्रसिद्ध किया जाता है उस भूमिका में ग्रंथ और ग्रंथकर्ता आचार्यों की ऐसी समालोचना की जाती है जिससे ग्रंथ और उसके रचयिता-आचार्यों की मान्यता एवं प्रामाणिकता में सन्देह तथा भ्रम उत्पन्न होता रहे।

जिन वीतराग महर्षियों ने गृहस्थों के कल्याण की प्रचुर भावना से उन ग्रन्थों की रचना की है, उनके उस महान् उपकार और कृतज्ञता का प्रतिफल आज इस प्रकार विपरीत रूप में दिया

जा रहा है यह देखकर हमें बहुत खेद होता है। इस प्रकार के पाण्डित्य प्रदर्शन से समाज हित के बदले उसका तथा अपना अहित ही होता है। और जैन धर्म के प्रचार के स्थान में उसका ह्रास एवं विपर्यास ही होता है।

जो जैनधर्म अनादिकाल से अभी तक युग-प्रवर्तक तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, प्रत्याचार्य परंपरा से अविच्छिन्न रूप में चला आ रहा है। और जिसका वस्तु स्वरूप प्रतिपादक, सहेतुक अकाट्य सिद्धान्त जीवमात्र के कल्याण का पथ प्रदर्शक है और पूर्वापर अविरुद्ध है उस धर्म में उक्त विकृतियां ब्युच्छित्ति के ही चिन्ह समझना चाहिये। अस्तु।

हमने अपने पूर्व पुण्योदय से जिनवाणी के दो अक्षरों का बोध प्राप्त किया है उसका उपयोग आगमानुकूल सरलता से तत्व ग्रहण और पर प्रतिपादन रूप में करना चाहिये यही बुद्धि का सदुपयोग है और ऐसा सद्भाव धारण करने में ही स्व-पर कल्याण है। आशा है हमारे इस नम्र निवेदन पर संस्कृत पाठी तथा आंग्लभाषा-पाठी सभी विद्वान् ध्यान देंगे।

श्रद्धेय धर्मरत्न पण्डित लालारामजी शास्त्री का आभार या आशीर्वाद

इस ग्रन्थ के लिखने के पहले हमने इस सम्बन्ध में जितने नोट किये थे उन्हें लेकर हम अपने बड़े भाई साहेब श्रीमान धर्मरत्न पूज्य पं० लालाराम जी शास्त्री महोदय के पास गये थे। उन्हों ने हमारे सभी नोटों को ध्यान से देखा, और कई बातें हमें

श्रीमान् सेठ हीरालाल जी गंगाराम काशलीवाल
नांदगांव (नासिक)

बताई, साथ ही उन्हों ने यह बात बड़े आश्चर्य के साथ कही कि 'जीवकाण्ड और कर्मकाण्डसमुच्चा गोम्मटसार द्रव्यवेद के निरूपण से भरा हुआ है, और षट्खण्डागम-सिद्धांत शास्त्र में कहीं भी द्रव्यवेदका वर्णन नहीं है ऐसा ये समझदार विद्वान भी कहते हैं' यह बहुत ही आश्चर्य की बात है। अस्तु।

अनेक गम्भीर संस्कृत शास्त्रों का अनुवाद करने के कारण श्रद्धेय शास्त्री जी का जैसा असाधारण एवं परिपक्व बढ़ा चढ़ा शास्त्रीय अनुभव है और जैसे वे समाज प्रतिष्ठित उद्भट विद्वान हैं उसी प्रकार उन्हें आगम एवं धर्म रक्षण की भी समधिक चिन्ता रहती है। प्रोफेसर साहब के मन्तव्यों से तो वे उन्हीं के हितकी हानि समझते हैं परन्तु सिद्धांत सूत्र में "सञ्जद" पद जुड़ जाने एवं उसके ताम्रपत्र में स्थायी हो जाने से वे आगम में विपरीतत्व आने से समाज भर का अहित समझते हैं, इसका उन्हें अधिक खेद है। इस लिये जिस प्रकार "दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण प्रथम भाग,, नामक ट्रैक्ट के लिखने के लिये हमें आदेश दिया था। इसी भान्ति यह ग्रंथ भी उन्हीं के आदेश का परिणाम है। अन्यथा हम दोनों में से एक भी ट्रैक्ट के लिखने में सफल नहीं हो पाते, कारण कि अष्ट सहस्री, प्रमेयकमल मार्तण्ड राजवार्तिकालंकार पञ्चाध्यायी इन ग्रन्थों के अध्यापन तथा संस्था एवं समाज सम्बन्धी दूसरे २ अनेक कार्यों के आधिक्य से हमें थोड़ा भी अवकाश नहीं है। फिर भी भाई साहब की प्रेरणा से हमने दिन में तो नियत कार्य किये हैं, रात्रि में दो दो बजे से

उठ कर इन टूकटों को लिखा है। इस आवश्यक कार्य-सम्पादन के लिये हम पूज्य भाई साहबका आभार माननेकी अपेक्षा उनका शुभाशीर्वाद चाहते हैं।

इस ग्रन्थपर आचार्य महाराज तथा कमेटी का सन्तोष और प्रस्ताव

सहायक महानुभाव

सेठ वंशीलाल जी नादगांव तथा सेठ गुलाबचन्द जी

इस कार्तिक (श्री वीर निर्वाण सम्वत् २४७३) की अष्टान्हिका में परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर जी महाराज और मुनिराज नेमिसागर जी तथा मुनिराज धर्म-सागर जी महाराज के दर्शनार्थ हम कवलाना (नासिक) गये थे, इसी समय वहां पर "श्री आचार्य शान्तिसागर जिनवाणी जीर्णो-द्धार कमेटी" का वार्षिक उत्सव भी हुआ था। परम पूज्य आचार्य महाराज, दोनों मुनिराज और उक्त कमेटी के समक्ष हमने अपनी यह "सिद्धान्त-सूत्र-समन्वय" नामक ग्रन्थ रचना लिखित रूपमें वहीं पर पढ़ी थी। विवाद कोटि में आये हुये 'संजद' शब्द के विषय में परम पूज्य आचार्य महाराज और कमेटी को भी बहुत चिन्ता थी कमेटी इस सम्बन्ध में अपना उत्तरदायित्व भी समझती है। कारण कमेटी में सभी विचारशील धार्मिक महानुभाव हैं। हमारी इस रचना को बराबर तीन दिन तक बहुत ध्यान से सुन कर आचार्य महाराज तथा सबों ने बहुत हर्ष और सन्तोष प्रगट

किया। आगरा के प्रख्यात श्रीमान सेठ मगनलाल जी पाटणी आदि अन्य महानुभाव भी उपस्थित थे। कमेटी ने अपने अधिवेशन में कोल्हापुर पट्टाधीश श्रीमान पूज्य भट्टारक जिनसेन स्वामी की नायकता में इस आशय का एक प्रस्ताव सर्वमतसे पास किया कि इस ग्रन्थ रचना के प्रसिद्ध होने के पीछे दो माह में भावपक्षी विद्वान अपना अभिप्राय सिद्ध करें। फिर यह कमेटी परम पूज्य श्री १०८ आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के आदेशानुसार संजद पद सम्बन्धी अपना निर्णय घोषित कर देगी। अस्तु।

जिनवाणी जीर्णोद्धारकी प्रबन्धक और ट्रस्ट कमेटी के सुयोग्य सदस्य श्रीमान सेठ वंशीलाल जी गङ्गाराम काशलीवाल, नादगांव (नासिक) निवासी, तथा श्रीमान सेठ गुलाबचन्द जी खेमचन्द जी सांगली (कोल्हापुर स्टेट) निवासी भी हैं। इन दोनों महानुभावों ने इस ग्रन्थ को संजद पद सम्बन्धी विवाद को दूर करने वाला एवं अत्युपयोगी समझकर कर स्वयं यह इच्छा प्रगट की कि इस ग्रन्थ को ५०० प्रति छपाई जावें और उनकी छपाई तथा कागज में जो खर्च होगा वह हमारी ओर से होगा। तदनुसार यह ग्रन्थ उक्त दोनों महानुभावों के द्रव्य से प्रकाशित हो रहा है।

दोनों ही महानुभाव देव शास्त्र गुरु भक्त हैं। दृढ़ धार्मिक हैं। धर्म सम्बन्धी किसी प्रकार का अविनय और विरोध दोनों ही सहन करने वाले नहीं हैं। दोनों ही समाज प्रतिष्ठित और लक्षाधीश हैं। श्री० सेठ वंशीलाल जी काशलीवाल महाराष्ट्र प्रांत के प्रख्यात 'नगर सेठ' कहे जाते हैं। उनकी नादगांवमें दो कपास

की गिरनी भी चल रही हैं। नादगांव म्यूनिस्पालिटी के चेयरमैन भी आप बहुत वर्षों तक रह चुके हैं। वहां के सरकारी व नगर के कार्यों में प्रधान रूप से बुलाये जाते हैं। धवल सिद्धांत व ताम्रपत्र लिपि के लिये आपने ११०१) रु० प्रदान किये हैं। नादगांव के विशाल जिन मन्दिर में एक वेदी और मानस्तम्भ बनवाने का सङ्कल्प आप कर चुके हैं इस कार्य में करीब २१००००) रु० लगाना चाहते हैं। श्री० सेठ गुलाबचन्द जी शाह सांगली के प्रसिद्ध व्यापारी हैं। जिन दिनों भा० दि० जैन महासभा के मुखपत्र जैन गजट के सम्पादक और सं० सम्पादक के नाते श्रीमान श्रद्धेय धर्मरत्न पं० लालाराम जी शास्त्री व हम पर डिफीमेशन (फौजदारी) केश बम्बई ऐसेम्बली के मेम्बर सेठ बालचन्द रामचन्द जी एम० ए० ने दायर किया था, उस समय इन्हीं श्री० सेठ गुलाबचन्द शाह ने केवल धर्म पक्ष की रक्षा के उद्देश्य से अपना बहुत बड़ा हुआ व्यापार छोड़कर बेलगांव में करीब ८ माह रहकर हमें हर प्रकार की सहायता दी थी, वकीलों को परामर्श देना साक्षियों को तयार करना, आदि सभी कार्योंमें वे हमारे सहायक रहे थे। यह उनकी धर्म की लगन का ही परिणाम है। जिस प्रकार हम दोनों भाइयों ने अपने व्यापार की हानि उठाकर और अनेक कष्टों की कुछ भी परवा नहीं करके केवल धर्मपक्ष की रक्षा के उद्देश्य से निष्पृहवृत्ति से यह धर्म सेवा की थी उसी प्रकार शोलापुर, कोल्हापुर, पूना आदि (दक्षिण प्रांत) के प्रसिद्ध २ कोट्याधीश महानुभावों ने भी धर्म चिंता से अपनी शक्ति इस

केश में लगाई थी। भारत भर के समाज की आंखें भी उस केश की ओर लगी हुई थीं। जिस केश में बम्बई ऐसेम्बली के भू० पू० अर्थ सदस्य (फाइनेंस मिनिष्टर) और कोल्हापुर दीवान श्री० माननीय लट्ठे महोदय, फर्यादी (विपक्ष) के वकील थे उस बड़े भारी केश में पूर्ण सफलता के साथ हमारी विजय होने में उक्त सभी महानुभाव और खासकर श्री० सेठ गुलाबचन्द जी शाह सांगली का अथक प्रयत्न ही साधक था। सांगली राज्य के चेम्बर आफ कामर्स के प्रेसीडेण्ट पद पर रहकर श्री० सेठ गुलाबचन्द जी शाह ने वहां के व्यापारीवर्ग में पर्याप्त आकर्षण किया है। वहां की व्यापार सम्बन्धी उलझनों को आप बड़े चातुर्य से दूर कर देते हैं। श्री० शांतिसागर अनाथाश्रम सेडवाल के आप ट्रष्ट कमेटी के मन्त्री हैं। धवल सिद्धांत ताम्रपत्र लिपि के लिये आपने अपनी ओर से ५०००) और अपनी श्री० धर्मपत्नी की ओर से १०००) रु० दिया है। दक्षिण उत्तर के समस्त सिद्ध क्षेत्र व अतिशय क्षेत्रों की आप दो बार यात्रा भी कर चुके हैं। आपके ४ पुत्र हैं जो सभी योग्य हैं।

श्री० सेठ वंशीलाल जी नादगांव और श्री० सेठ गुलाबचन्द जी सांगली दोनों ही अनेक धार्मिक कार्यों में दान करते हैं। श्री० गोपाल दि० जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेना (ग्वालियर स्टेट) के ध्रौव्य फण्ड में दोनों ने १००१) १००१) रु० प्रदान किये हैं। दोनों ही इस प्रख्यात संस्था के सुयोग्य सदस्य हैं। इस ग्रन्थ प्रकाशन में भी उन्हों ने द्रव्य लगाया है, इनके निमित्त से ही हम उनकी

प्रशंसा नहीं करते हैं किन्तु उक्त दोनों महानुभाव सदैव धर्म की चिंता रखने वाले और धर्म कामों में अपना योग देने वाले हैं। स्वयं धर्म निष्ठ हैं प्रतिदिन पंचामृताभिषेक करके ही भोजन करते हैं यह धर्म लगन ही एक ऐसा विशेष हेतु है जिससे उनके प्रति हमारा विशेष आदर और स्नेह है। तथा उनका हमारे प्रति है। दिगम्बरत्व और सिद्धांत शास्त्र परमागम की अक्षुण्ण रक्षा की सदिच्छा से उन्होंने इस 'सिद्धांत सूत्र समन्वय' ग्रन्थ के प्रकाशन में सहायता दी है, तदर्थ दोनों महानुभावों को धन्यवाद देते हैं।

—माननीय बम्बई पञ्चायत—

इस प्रसङ्ग में हम बम्बई की धर्म परायण पञ्चायत और उस के अध्यक्ष महोदय का आभार माने बिना भी नहीं रह सकते हैं। यदि बम्बई पंचायत इस कार्य में अपनी पूरी शक्ति नहीं लगाती तो समाज में सिद्धांत विपरीत भ्रम स्थायी रूपसे स्थान पा लेता। बम्बई पञ्चायत के विशेष प्रयत्न और शान्ति पूर्ण वैधानिक आन्दोलन एवं शास्त्रीय ठोस प्रचार से उस भ्रमका बीज भी अब ठहर नहीं सकता है। जिस प्रकार दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण प्रथम भाग, द्वितीय भाग, तृतीय भाग, इन बड़े २ तीनों ट्रैक्टोंका प्रकाशन बम्बई पञ्चायत ने कराया है, उसी प्रकार इस "सिद्धांत सूत्र समन्वय" ग्रन्थका प्रकाशनभी दिगम्बरजैन पंचायत की ओरसे ही हो रहा है। इसके लिये हम बम्बई पञ्चायत को भूरि भूरि धन्यवाद देते हैं।

मक्खनलाल शास्त्री "तिलक"

समर्पण

श्री शान्तिसागर जगद्गुरु सारसारी,
श्री वीतराग पटवर्जित लिंगधारी।
आचार्य साधुगण पूजित, विश्वकीर्ति,
भक्त्या नमामि तपतेज सुदिव्य मूर्ति ॥
सिद्धांत सूत्र अरु पूर्ण श्रुताधिकारी,
श्री संयमाधिपति भव्य भवाब्धितारी।
मेरा विशुद्ध रचना यह भेंट लीजे,
सिद्धांत रक्षण तथा च कृतार्थ कीजे ॥

श्रीमद्विश्ववन्द्य, लोकहितङ्कर, अनेक उद्भटविद्वान तपस्वी आचार्य साधु शिष्य समूह परिवेष्टित, चारित्र चक्रवर्ती पूज्य पाद श्री १०८ आचार्य शिरोमणि श्री शांतिसागर जी महाराज के कर कमलों में यह ग्रन्थ-रचना पूर्ण भक्ति और श्रद्धांजलि के साथ समर्पित है।

चरणोपासक—मक्खनलाल शास्त्री

ग्रन्थ रचयिता का परिचय

श्रीमान न्यायालङ्कार, विद्या वारिधि, वादीभ केसरी, धर्मवीर पण्डित मक्खनलाल जी शास्त्री से सारा जैन समाज भली भान्ति परिचित है। आपकी विद्वत्ता प्रतिष्ठा और प्रभाव समाज में प्रख्यात है आप हमेशा से ही जैन संस्कृति की रक्षा एवं उसका प्रचार करने में अग्रसर रहे हैं। आप स्वयं सच्चे धर्मात्मा हैं। इस समय आप द्वितीय प्रतिमाधारी श्रावक हैं।

आर्ष-मार्गानुकूल ही आपने सर्वदा जैन संस्कृति का प्रचार किया है, यही कारण है कि आपको सुधार वादियों के साथ अनेक बड़े २ संघर्ष लेने पड़े हैं, और उन संघर्षों में आपने धर्म रक्षा के सिवाय और किसी की कुछ भी परवा नहीं की है। इसलिये आप सदैव सफल हुये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैन समाज में जब २ भी सामाजिक या धार्मिक विचार धाराओं में मत भेद होने से संघर्ष हुआ है, तभी आपने हमेशा अपना दृष्टि-कोण आर्ष-मार्गानुकूल ही रक्खा है और आर्ष विरुद्ध प्रचार का डट कर सामना एवं विरोध किया है। आप श्री भारतवर्षीय दि० जैन महासभा के प्रमुख सदस्यों में एक हैं, आप महासभा के प्रमुख पत्र जैन गजट के अनेकों वर्ष सम्पादक रहे हैं। आपके सम्पादन काल में जैन गजट बहुत उन्नति पथ पर था वर्तमान में भी आप जैन बोधक के सम्पादक हैं। अन्तर्जातीय विवाह, विधवा विवाह, स्पर्शास्पर्शलोप इन धर्म विरुद्ध बातों का आपने हमेशा से ही विरोध किया है।

श्रीमान् धर्मपरायण सेठ गुलाबचंदजी खेमचंद शाह

हातकणंगलेकर, सांगली (कोल्हापुर)

इस ग्रन्थ की १५० प्रतियां आप के द्रव्य से प्रकाशित

हुई हैं

आज जिन जातियों में उक्त प्रथायें प्रचलित हैं, उनमें ऐसी कोई भी जाति नहीं है, जो धार्मिक एवं आर्थिकदृष्टि से बढ़ी चढ़ी हो, प्रत्युत वे जातियां अधःपतन की ओर जा रही हैं।

इसी प्रकार समय २ पर आपने जो अपने विचार समाज के सामने रक्खे हैं, वे सभी शास्त्रीय एवं अकाट्य युक्तियों से युक्त रहे हैं।

आपने पञ्चाध्यायी राजवार्तिक तथा पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय इन सैद्धान्तिक ग्रन्थों की विस्तृत एवं गम्भीर टीकायें भी हैं। जो कि विद्वत्समाज में अतीव गौरव के साथ मान्य समझी गई हैं। देहली में आर्य-समाजियों के साथ लगातार छह दिन तक शास्त्रार्थ करके आपने महत्व पूर्ण विजय प्राप्त की है। उसी के सम्मान स्वरूप आपको जैन समाज ने "वादीभ केसरी" की पदवी से विभूषित किया है। आज से करीब २० वर्ष पहिले आपने श्री गो० दि० जैन सिद्धांत विद्यालय मोरेनाको उस हालत में संभाला था, जब कि इस विद्यालय का कोई धनी धोरी ही नहीं दीखता था आपसी दलबन्दी के कारण विद्यालय के कार्यकर्ता अध्यापक वर्ग विद्यालय से चले गये थे।

उच्च पदाधिकारी योग्य संचालक के नहीं मिलने के कारण विद्यालय के चलाने में अतीव कठिनाई महसूस कर रहे थे उस कठिन समय में आपने आकर विद्यालय की बागडोर अपने हाथ में ली थी, और विद्यालय को आर्थिक सङ्कट से दूर कर विद्यालय के ध्येयके अनुकूल ही अभी तक बराबर विद्यालयको आप चला

रहे हैं। बीच २ में इसमें अनेक झगड़े और विघ्न तथा बाधायें भी खड़ी की गई, परन्तु उन सब बड़ी से बड़ी टक्करों से बचा कर विद्यालय को उच्च धार्मिक आदर्श के साथ आपने चलाया है। यह आपकी ही अनोखी विशेषता है। जो कि अनेक विकट सङ्कटों के आने पर भी आप सबको अपने ऊपर झेलते हुए निर्भीकता और दृढ़ता के साथ कार्य में संलग्न रह रहे हैं। वर्तमान में विद्यालय का प्रबन्ध व पढ़ाई आदि सभी बातें बड़े अच्छे रूप में चल रही हैं ग्वालियर दरबार से भी विद्यालयको १००) माहवार मिल रहा है। यह सब आपके सतत प्रयत्न का ही परिणाम है।

कई वर्षों तक भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा परीक्षालय के मन्त्री भी आप रहे हैं। आपके मन्त्रित्व कालमें परीक्षालयने थोड़े ही समय में अच्छी उन्नति कर दिखाई थी।

गवालियर स्टेट में भी आपका अच्छा सम्मान है, आनरेरी-मजिस्ट्रेटके पद पर आप बहुत वर्षों तक रह चुके हैं। वर्तमानमें आप ग्वालियर गवर्नमेंट की डिस्ट्रिक्ट ओकाफ कमेटी के मैंबर हैं। दोनों कर्मों के उपलक्ष्य में आपको श्रीमान हिज हाइनेस ग्वालियर दरबार की ओर से पोशाकें भेंट में प्राप्त हुई हैं।

वंश परिचय

आप चावली (आगरा) निवासी स्वर्गीय श्रीमान् लाला तोतारामजी के सुपुत्र हैं, लाला जी गांव के अत्यन्त प्रतिष्ठित एवं धार्मिक सज्जन पुरुष थे उनके छह पुत्रों में सब से बड़े पुत्र लाला रामलाल जी थे जो बाल ब्रह्मचारी रहे, ४५ वर्ष की आयु में

उनका अन्त हो गया।

इनके वर्तमान पुत्रों में सब से बड़े लाला मिट्ठनलाल जी हैं। इन्हों ने अलीगढ में पं० छेदालाल जी से संस्कृत का अध्ययन किया था वे भी बहुत धार्मिक हैं।

उनसे छोटे श्रीमान धर्मरत्न पं० लालाराम जी शास्त्री हैं, आपने अनेकों संस्कृत के उच्चकोटि के ग्रंथों की भाषा टीकायें बनाई हैं। आदि पुराण की समीक्षा की परीक्षा आदि ट्रैक्ट भी लिखे हैं जिनका समाज ने पूरा आदर किया है। तथा भक्तामर शतद्वयी नामक संस्कृत ग्रन्थ की बड़ी सुन्दर स्वतन्त्र रचनाभी आपने की है: भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के सहायक महामन्त्री पद पर भी आप अनेक वर्षों रहे हैं, जैनगजट के सम्पादक भी आप रह चुके हैं। आप समाज में लब्ध-प्रतिष्ठ व उद्भट विद्वान हैं और अत्यन्त धार्मिक हैं आप द्वितीय प्रतिमाधारी श्रावक हैं, इस समय आप मैनपुरी में अपने कुटुम्बियों के साथ रहते हुये वहीं व्यापार करते हैं।

—आचार्य सुधर्म सागर जी महाराज—

श्रीमान परमपूज्य विद्वद्वंद्यपाद श्री १०८ आचार्य श्री धर्म-सागर जी महाराज उक्त धर्मरत्न जी के लघु भ्राता थे, आचार्य महाराज ने संघ के समस्त मुनिराजों को संस्कृत का अध्ययन कराया था, सुधर्म श्रावकाचार सुधर्म ध्यान प्रदीप, चतुर्विंशिका इन महान संस्कृत ग्रंथों की कई हजार श्लोकोंमें रचना की है। वे ग्रन्थ समाज के हित के लिये परम साधन भूत हैं। महाराज ने

अपने विहार में धर्मोपदेश द्वारा जगत का महान उपकार किया है आप श्रुतज्ञानी महान विद्वान एवं विशिष्ट तपोनिष्ठ वीतराग महर्षि थे लिखते हुए हर्ष होता है कि ऐसे साधुरत्न इसी वंश में उत्पन्न हुए हैं इनकी गृहस्थ अवस्था के सुपुत्र आयुर्वेदाचार्य पं० जयकुमार जी वैद्य शास्त्री नागौर (मारवाड) में स्वतन्त्र व्यवसाय करते हैं।

इनसे छोटे भाई श्रीमान पण्डित मक्खनलाल जी शास्त्री हैं और उनसे छोटे भाई श्रीमान बाबू श्रीलाल जी जौहरी हैं जो सकुटुम्ब जयपुर में जवाहरात का व्यापार करते हैं और बहुत धार्मिक तथा प्रामाणिक पुरुष हैं। इस प्रकार पद्मावतीपुरवाल जाति के पवित्र गौरव का रखने वाला यह समस्त परिवार कट्टर धार्मिक और विद्वान है। इस दृढ धार्मिक, चारित्र—निष्ठ, विद्वान कुटुम्ब का परिचय लिखते हुये मुझे बहुत प्रसन्नता होती है।

ग्रन्थ परिचय

षटखण्डागम जैन तत्व एवं जैन वाङ्मय की वर्तमान में जड़ है, अथवा यह कहना चाहिये कि जीव तत्व और कर्म सिद्धांत का यह सिद्धांत शास्त्र अद्भुत भण्डार है। इसमें सन्देह नहीं कि इस के पठन-पाठन का अधिकार सर्व साधारण को नहीं है। केवल मुनि सम्प्रदाय को ही इसके पठन-पाठन का अधिकार है। इसी आशय को लेकर पण्डित जी ने सिद्धांत शास्त्र के मुद्रण विक्रय और गृहस्थों द्वारा उसके पठन-पाठन का विरोध किया है। उन का यह सुझाव आगमानुकूल ही है। जबसे उक्त ग्रन्थों का

प्रकाशन हुआ है, तभी से दिगम्बर जैन धर्म की मुख्य २ मान्यताओं को अनावश्यक एवं अप्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाने लगा है।

वर्तमान में दिगम्बर जैन विद्वानों में तीन प्रकार की विचार धारायें हैं, प्रायः तीनों प्रकार के विचार वाले विद्वान अपनी २ मान्यताओं का आधार षटखण्डागम को बतलाते हैं, कुछ लोगों का विचार है कि स्त्रीमुक्ति सवस्त्रमुक्ति तथा केवली कवलाहार दिगम्बर जैनागम से भी सिद्ध होते हैं और इसमें षटखण्डागम के सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शन-कालांतर-भावाल्प-बहुत्व प्ररूपणाओं में मानुषी के चौदह गुणस्थानों का वर्णन प्रमाण में देते हैं, परन्तु पांचवें गुणस्थान से ऊपर कौन सी मानुषी ली गई है, तथा दिगम्बर जैन आचार्य परम्परा ने कौन सी मानुषी के चौदह गुणस्थान बताये हैं ? दिगम्बर जैन धर्म की ऐतिहासिक सामग्री एवं पुरातत्व सामग्री में क्या कहीं पर द्रव्यस्त्री के मोक्ष का उल्लेख मिलता है ? अथवा कहीं पर कोई मुक्त द्रव्यस्त्री की मूर्त्ति उपलब्ध है ? इत्यादि बातों पर विचार करने से यह स्थूल बुद्धि वालों को भी सरलता से प्रतीत हो जाता है कि जहां पर मानुषियों के छठे आदि गुणस्थानों का वर्णन है वह सब भाव की अपेक्षा से ही है, न कि द्रव्यापेक्षा से।

दूसरी प्रकार की विचार धारा वाले वे लोग हैं जो द्रव्यस्त्री की दीक्षा, तथा मुक्ति का निषेध तो करते हैं और षटखण्डागम में बताये गये, मानुषी के चौदह गुणस्थानों को भाव की अपेक्षा से

बताते हैं। इसी आधार पर षटखण्डागम के प्रथम भाग (जीव—स्थान सत्प्ररूपणा) में ६३वें सूत्रमें (जिसमें मानुषियों की पर्याप्त अवस्था कौन २ से गुणस्थानों में होती है इसका वर्णन है) संजद पद है, ऐसा कहते हैं, न्यायालङ्कार पं० मक्खनलाल जी शास्त्री का एवं उनके सहयोगी विद्वानों का यह कहना है, कि ६३वां सूत्र योग मार्गणा और पर्याप्ति प्रकरण का है अतः वह द्रव्यवेद का ही प्रतिपादक है, इसलिये उसमें संजद पद किसी प्रकार नहीं हो सकता है, इसी सूत्रसे द्रव्यस्त्रियों के आदि के पांच गुणस्थान ही सिद्ध होते हैं। यह बात सूत्रकार के मत से स्पष्ट हो जाती है।

गोम्मटसार में भी मानुषियों के चौदह गुणस्थानों का कथन है। और इस शास्त्र का काफी समय से जैन समाज में पठनपाठन हो रहा है। परन्तु कभी किसी को यह कहने का साहस नहीं हुआ है कि 'दिगम्बर जैनागम ग्रन्थों में भी श्वेताम्बर मान्यता के अनुसार द्रव्यस्त्रियों की मुक्ति का विधान है' और न किसी ने आज तक यही कहा है कि इसमें द्रव्यवेद का वर्णन नहीं है। इसका एक मात्र कारण यह है कि उसी गोम्मटसार ग्रन्थ में स्त्रियों के उत्तम संहनन का निषेध किया गया है, और यह गोम्मटसार ग्रन्थ षटखण्डागम से ही बनाया गया है, पण्डित जी ने अपने इस गम्भीर ग्रन्थ में युक्ति और आगम प्रमाणों से जो यह सिद्ध किया है कि ६३वें सूत्र में संजद पद नहीं हो सकता है, वह अकाट्य है। विद्वानों को उनके इस सप्रमाण रहस्य पूर्ण कथन पर मनन करना चाहिये।

—न्यायालङ्कार जी का नवीन दृष्टिकोण—

न्यायालङ्कार जी ने इस ग्रन्थ में आदि की चार मार्गणाओं को लेकर एक ऐसा नवीन दृष्टिकोण प्रगट किया है जो षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र के द्रव्यवेद वर्णन का स्फुट रूप से परिचय करा देता है धवल सिद्धांत के पहले सूत्र से लेकर १०० सूत्रों पर्यंत जो क्रमबद्ध वर्णन द्रव्यवेद की मुख्यता से उन्हों ने बताया है वह एक सिद्धांत शास्त्र के रहस्य को समझने के लिये अपूर्व कुञ्जी है। मैं समझता हूं कि यह बात भाववेद मानने वाले विद्वानों के ध्यान में नहीं आई होगी ? यदि आई होती तो वे इस षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र को द्रव्यवेद के कथन से सर्वथा शून्य और केवल एक भाववेद का ही अंश वर्णन करने वाला अधूरा नहीं बताते ? अब वे इस नवीन दृष्टिकोण को ध्यान पूर्वक पढ़ेंगे तो मुझे आशा है कि वे पूर्ण रूप से उससे सहमत हो जांयगे। इसी प्रकार आलापाधिकार में पर्याप्त अपर्याप्त की मुख्यता से वर्णन है और उसमें भाववेद द्रव्यवेद दोनों का ही समावेश हो जाता है। तथा सूत्रों में द्रव्यवेद का नाम क्यों नहीं लिया गया है ? फिर भी उसका कथन अवश्यम्भावी है, ये दोनों बातें भी बहुत अच्छे रूप में इस ग्रन्थ में प्रगट की गई हैं। इन सब नवीन दृष्टिकोणों से तथा गम्भीर और स्फुट विवेचन से न्यायालङ्कार जी की गवेषणा पूर्ण असाधारण विद्वत्ता और सिद्धांत-मर्मज्ञता का परिचय भली भांति हो जाता है।

दिगम्बर जैनधर्म की अक्षुण्ण रक्षा बनी रहे यही पवित्र

उद्देश्य श्रीमान न्यायालङ्कार जी का इस विद्वत्ता—पूर्ण ग्रन्थ के लिखने का है, इसके लिये मैं पण्डित जी की भूरि २ प्रशंसा करता हूं, इन कृतियों के लिये समाज उनका सदैव कृतज्ञ रहेगा।

रामप्रसाद जैन शास्त्री,

स्थान-दि० जैन मन्दिर, सम्पादक-दि० जैन सिद्धांत दर्पण,
भूलेश्वर कालबादेवी बंबई, (दि० जैन पंचायत बम्बई)
१-१-१९४७।

प्रकाशक के दो शब्द

अभी दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण के तीनों भाग बम्बई की दिगम्बर जैन पंचायत ने ही अपने व्यय से छपाकर सर्वत्र बिना मूल्य भेजे हैं। इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ को भी बम्बई पंचायत ही छपाना चाहती थी परन्तु कवलाना में नादगांव निवासी श्रीमान सेठ बंशीलाल जी काशलीवाल तथा सांगली निवासी श्रीमान सेठ गुलाबचंद जी शाह ने ग्रन्थ के विषय को संयत पद निर्णायक समझकर इसे अत्युपयोगी समझा और बहुत सन्तोष व्यक्त किया दोनों महानुभावों की इच्छा थी कि वह ग्रन्थ हमारे द्रव्य से छपा कर बांटा जाय। बम्बई पंचायत ने उन दोनों श्रीमानों की सदिच्छा को स्वीकार किया है। २५०-२५० प्रति दोनों सज्जनों के द्रव्य से छपाई गई हैं। इस धर्म प्रेम पूर्ण सहायता के लिये पचायत उक्त दोनों महानुभावों को बहुत धन्यवाद देती है। हम समझते हैं कि जिस सिद्धांत रक्षण के सदुद्देश्य से बम्बई पंचायत

ने इस संजद पद सम्बन्धी विवाद को दूर करने के लिये अपनी शक्ति लगाई है और पूर्ण चिंता रखी है उसकी सफल समाप्ति श्रीमान विद्वद्वर पं० रामप्रसाद जी शास्त्री, पूज्य श्री क्षुल्लक सूरिसिंह जी के सद्हेतुक लेखों से तथा इस "सिद्धांत सूत्र समन्वय" ग्रन्थ द्वारा अवश्य हो जायगी ऐसी आशा है। इस अपूर्व खोज के साथ लिखे गये गम्भीर ग्रन्थ निर्माण के लिये बम्बई पंचायत श्रीमान विद्यावारिधि वादीभ केसरी न्यायालङ्कार पं० मक्खनलाल जी शास्त्री की अतीव कृतज्ञ रहेगी।

सुन्दरलाल जैन,
अध्यक्ष दि० जैन पंचायत बम्बई।
(प्रतिनिधि—रायबहादुर सेठ जुहारुमल मूलचन्द जी)

मुद्रक के दो वाक्य

धवला के ९३वें सूत्रमें 'संजद' पद न होने के विषय में विद्वान लेखक महोदय ने जो इस पुस्तक द्वारा स्पष्टीकरण किया है हमारी उससे पूर्ण सहमति है।

इस पुस्तक के छापने में संशोधन, छपाई तथा सफाई का यथाशक्य सावधानी से ध्यान रक्खा गया है किन्तु टाइप पुराना अतएव घिसा हुआ होने के कारण अनेक स्थानों पर मात्रायें रेफ आदि स्पष्ट नहीं छप सके हैं। नये टाइप को यथासमय प्राप्त करने का भगीरथ प्रयत्न किया गया किन्तु सफलता न मिलसकी। पुस्तक की आवश्यकता बहुत शीघ्र थी अतः इस पुराने टाइप से

ही पुस्तक छापनी पड़ी। इस विवशता को पाठक महानुभाव ध्यान में न रखकर छपाई की अनिवार्य त्रुटि को समालोचना का विषय न बनावेंगे ऐसी आशा है।

—अजितकुमार जैन शास्त्री।

प्रो:-अकलङ्क प्रेस, चूड़ी सराय मुलतान शहर।

आवश्यक निवेदन

इस महत्व पूर्ण ग्रन्थ को ध्यान से पढ़ें। मनन करने के पीछे ग्रन्थ के सम्बन्ध में जैसी भी आपकी सम्मति हो निम्न लिखित पते पर शीघ्र ही भेजने की अवश्य कृपा करें।

श्रीमान विद्यावारिधि न्यायालङ्कार

पं० मक्खनलाल जी जैन शास्त्री,

प्रिंसिपल:—श्री० गो० दि० जैन सिद्धांत विद्यालय,

मोरेना (ग्वालियर स्टेट)

निवेदक:-रामप्रसाद जी जैन शास्त्री,

(दिगम्बर जैन पंचायत बम्बई की ओर से)

श्रीमान् विद्यावारिधि वादीभकेसरी, न्यायालङ्कार, धर्मवीर

पं० मक्खनलाल जी शास्त्री

सम्पादक-जैन बोधक

[illegible] के उद्भट विद्वान, प्रभावक लेखक और इस सिद्धान्त
सूत्र समन्वय ग्रन्थ के रचयिता आप ही हैं

श्री वर्धमानाय नमः

सिद्धान्त सूत्र समन्वय

(सिद्धान्त शास्त्र-रहस्य समझने की तालिका (कुंजी)

षट् खण्डागम रहस्य और संजद पद पर विचार

अरहंत भासि यत्थंगणहरदेवेहि गंत्थियं सव्वं
पणमामि भत्तिजुत्तं सुदणाणमहोवयं सिरसा ॥

अर्हत्सिद्धान्नमस्कृत्य सूरिसाधूंश्च भावतः ।
जिनागममनुस्मृत्य प्रबन्धं रचयाम्यहम् ।

श्रीमत्परम पूज्य आचार्य धरसेण से पढ़कर आचार्य भूतबली पुष्पदन्त ने षट् खण्डागम सिद्धान्त शास्त्रों की रचना की है और उन्होंने तथा समस्त आचार्य एवं मुनिराजों ने मिलकर उन सिद्धान्त शास्त्रों की समाप्ति होने पर जेष्ठ शुक्ला पंचमी के दिन उनकी पूजा की थी तभी से उस पंचमी का नाम श्रुत पंचमी प्रसिद्ध होगया है । 'लिखित शास्त्र पहले नहीं थे श्रुतपंचमी से ही चले' यह कहना तो ठीक नहीं है, श्रुत पूजा (सिद्धान्त शास्त्र की

पूजा) से श्रुतपंचमी नाम पड़ा है। वे शास्त्र सिद्धान्त शास्त्र हैं, उनकी रचना अंग-शास्त्रों के एकदेश ज्ञाता आचार्यों द्वारा की गई है, अतः उन शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार गृहस्थ को नहीं है। ऐसा हम अपने ट्रैक्ट में प्रसिद्ध कर चुके हैं, जब से उनका मुद्रण होकर गृहस्थों द्वारा पठन-पाठन चालू हुआ है, तभीसे ऐसी अनेक बातें विवाद कोटि में आ चुकी हैं, जिन से दिगम्बर जैन धर्म का मूल घात होनेकी पूरी संभावना है।

अनधिकृत विषय में अधिकार करने का ही यह दुष्परिणाम सामने आ चुका है कि 'णमोकार मन्त्र सादि है, द्रव्य स्त्री उसी पर्याय से मोक्ष जाने की अधिकारिणी है, सवस्त्र मोक्ष हो सकती है। केवली भगवान् कवलाहार करते हैं।' ये सब बातें उक्त षट्-खण्डागम सिद्धान्त शास्त्र आदि के प्रमाण बताकर प्रगटकी गई, परन्तु यह उन सिद्धान्त शास्त्रों का पूरा २ दुरुपयोग किया गया है और उन वन्दनीय सिद्धान्त शास्त्रों के नाम से समाज को धोखा दिया गया है। उन शास्त्रों में कोई ऐसी बात सर्वथा नहीं पाई जा सकती है जिस से दिगम्बर धर्म में बाधा उपस्थित हो। अतः समाज के विशिष्ट विद्वानों ने उन सब बातों का अपने लेखों व ट्रैक्टों द्वारा सप्रमाण निरसन कर दिया है। वर्तमान के वीत-रागी महर्षियों ने भी अपना अभिमत प्रसिद्ध कराया है। हमने भी उन बातों के खण्डन में एक विस्तृत ट्रैक्ट लिखा है। ये सब ट्रैक्ट और अभिमत धर्म—परायण दि० जैन बम्बई पंचायत ने

बहुत प्रयत्न और द्रव्य व्यय के साथ मुद्रित कराकर सर्वत्र भेज दिये हैं। ये सब बातें समाज के सामने आ चुकी हैं अतः उनपर कुछ भी लिखना व्यर्थ है।

परन्तु यहां पर विचारणीय बात यह है कि प्रो० हीरा लाल जी का मत है कि "श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों में कोई मौलिक (खास-मूल भूत) भेद नहीं है, द्रव्य स्त्री मोक्ष जा सकती है आदि बातें श्वेताम्बर मानते हैं दिगम्बर शास्त्र भी इसी बात को स्वीकार करते हैं" उसके प्रमाण में वे सबसे प्राचीन शास्त्र इन्हीं षट खण्डागम सिद्धान्त शास्त्रों को आधार बताते हैं, उनका कहना है कि "धवल सिद्धान्त के ९३ वें सूत्र में संयत पद होना चाहिये और वह सूत्र द्रव्य स्त्री के ही गुणस्थानों का प्रतिपादक है, अतः उस संयत पद विशिष्ट सूत्र से द्रव्य स्त्री के १४ गुणस्थान सिद्ध हो जाते हैं।" इस कथन की पुष्टि में प्रोफेसर साहब ने उस ९३ वें सूत्र में संयत पद जोड़ने की बहुत इच्छा की थी परन्तु संशोधक विद्वानों में विवाद खड़ा हो जाने से वे सूत्र में तो संजद पद नहीं जोड़ सके किंतु उस सूत्र के हिन्दी अनुवाद में उन्होंने संजद पद जोड़ ही दिया। जो सिद्धान्त शास्त्र और दिगम्बर जैन धर्म के सर्वथा विपरीत है। इन्हीं प्रोफेसर साहेब ने इस युग के आचार्य प्रमुख स्वामी कुन्दकुन्द को इस लिये अप्रमाण बताया है कि वे अपने द्वारा रचित शास्त्रों में द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थान से ऊपर के संयत गुणस्थान नहीं बताते हैं। प्रो० सा० की इस प्रकार की समझी हुई निराधार एवं हेतुशून्य

निरर्गल बात से कोई भी विद्वान् सहमत नहीं है।

दूसरा पक्ष

अब एक पक्ष समाज के विद्वानों में ऐसा भी खड़ा हो चला है कि जो यह कहता है कि 'षट् खण्डागम के ९३ वें सूत्र में संजद पद इस लिये होना चाहिये कि वह सूत्र द्रव्य स्त्री का कथन करने वाला नहीं है किंतु भाव स्त्री का निरूपक है और भाव वेद स्त्री के १४ गुणस्थान बताये गये हैं। इसके विरुद्ध समाज के कुछ अनुभवी विद्वानों एवं पूज्य त्यागियों का ऐसा कहना है कि उक्त ९३ वां सूत्र भाव वेद निरूपक नहीं है किंतु द्रव्य स्त्री का ही निरूपक है अतः उसमें सजद पद नहीं हो सकता है उसमें सजद पद जोड़ देने से द्रव्यस्त्री को मोक्ष एवं श्वेताम्बर मान्यता सहज सिद्ध होगी। तथा श्री षट् खण्डागम सिद्धान्त शास्त्र भी उसी श्वेताम्बर मान्यता का साधक होनेसे उसी सम्प्रदाय का समझा जायगा।

इस प्रकार विद्वानों में सजद पद पर विचार चल ही रहा था, इसी बीच में ताम्र पत्र निर्मापक कमेटी द्वारा नियुक्त किये गये संशोधक पं० फूलचन्द्र जी शास्त्री ने उस ताम्र पत्र में संजद पद उस सूत्र में खुदवा डाला। इस कृति से जो श्वेताम्बर मान्यता थी वह दिगम्बर शास्त्र में अब स्थायी बन चुकी है। भविष्य में इस कृति से दिगम्बर जैन धर्म पर पूरा आघात एवं दिगम्बर शास्त्रों पर कुठाराघात समझना चाहिये। पं० फूलचन्द्र जी को ग्रन्थ संशोधन के सिवा ऐसा कोई अधिकार नहीं था कि वे इस सिद्धान्त

शास्त्र को दिगम्बर धर्म के विपरीत साधना का आधार बना डालें और जब विद्वानों एवं त्यागियों में विचार विमर्श हो रहा है तब तक तो उन्हें सञ्जद पद जोड़ने का साहस कदापि करना उचित नहीं था।

जिस समय प्रो० हीरा लाल जी ने केवल हिंदी अर्थ में सञ्जत पद जोड़ कर छपा दिया था तब प० वंशीधर जी (शोलापुर) ने यहां तक लिखा था कि—" इन छपे हुए सिद्धान्त शास्त्रों को गङ्गा के गहरे जल बहुल कुण्ड में डुबा देना चाहिये,' और प्रो० हीरालाल जी द्वारा उस सञ्जद पद के हिंदी अर्थ में जुड़ा ने से ये शब्द भी उन्होंने लिखे थे कि " ऐसा भारी अनर्थ देख कर जिस मनुष्य की आंखों में खून नहीं उतरता है वह मनुष्य नहीं' पाठक विचार करें कि कितनी भयङ्कर बात प० वन्शी धर जी ने उस समय सञ्जद पद को हिन्दी अनुवाद में जोड़ देने पर कही थी, परन्तु बिचारे प्रो० सा० ने तो डरते डरते उस पद को केवल हिन्दी में ही जोड़ा है, किन्तु प० वन्शी धर जी के छोटे भाई प० खूब चन्द जी ने तो मूल सूत्र में ही सञ्जद पद को जोड़ कर तांबे के पत्र में खुदवा डाला है, अब वे ही पं० वन्शीधर जी अपने छोटे भाई द्वारा इस कृति को देखकर उल्टा कहने लगे हैं, जो समाज के प्रौढ़ विद्वान इस संयत शब्द से दिगम्बर धर्म के सिद्धान्त का घात समझ कर उस सञ्जद पद को निकलवाना चाहते हैं, उन विद्वानों को प० वन्शीधर जी मिथ्या दृष्टि और महापापी लिख रहे हैं। हमें ऐसी निरंकुश लेखनी एवं

किसी आकांक्षा वश पक्षान्ध मोहित बुद्धि पर खेद और आश्चर्य होता है जहां कि दिगम्बर सिद्धान्त एवं आगम की रक्षा की कुछ भी परवा नहीं है। ऐसे विद्वानों का उत्तर देना भी व्यर्थ है जो ग्रन्थाशय के विरुद्ध निराधार, उल्टा सीधा चाहे जैसा अपना मत ठोंकते हैं। हमारा मत तो यह है कि प्रत्येक विद्वान् एवं विवेकी पुरुष को अपना उद्देश्य सच्चा और दृढ़ बनाना चाहिये. जिस आगम के आधार पर हमारी धार्मिक मर्यादाऐं एवं निर्दोष अकाट्य सिद्धान्त सदा से अक्षुण्ण चले आ रहे हैं उस आगम में अपनी आकांक्षा मानमर्यादा एवं अपनी समझ सूझके दृष्टि कोण से कभी कोई परिवर्तन करने की दुर्भावना नहीं करना चाहिये। आगम के एक अक्षर का परिवर्तन (घटाना या बढ़ाना) भी महान् पाप है। आगम के विचार में जन समुदाय एवं बहुमत का भी कोई मूल्य नहीं है।

जिन दिनों चर्चासागर ग्रन्थ को कुछ बन्धुओं द्वारा अप्रमाण घोषित किया गया था, उस समय हमें बहुत खेद हुआ था क्योंकि चर्चा सागर एक संग्रह ग्रन्थ है, उस में गोम्मट सार, राजवार्तिक, मूलाचार पूजासार, आदि पुराण आदि शास्त्रों के प्रमाण दिये गये हैं अतः वे सब अप्रमाण ठहरते हैं, इस लिए उस जन समुदय और विद्वत्समाज के बहुमत को विरुद्ध देखकर भी हमने कोई चिन्ता नहीं की, और उन महान् शास्त्रों के रक्षण का लक्ष्य रखकर " चर्चा सागर पर शास्त्रीय प्रमाण,, इस नाम का एक ट्रैक्ट लिखा था जो बम्बई समाज द्वारा मुद्रित होकर

सर्वत्र भेजा गया। उस समय हमारे पास समाज के ४-५ कर्ण-धारों के पत्र आये थे कि उक्त ट्रैक्ट को आप अपने नाम से नहीं निकालें अन्यथा राय बहादुर लाला हुलास राय जी जैसे तेरह पंथ शुद्धाम्नाय वाले महानुभावों में जो विशेष प्रतिष्ठा आप की है वह नहीं रहेगी, उत्तर में हमने यही लिखा था कि हमारी प्रतिष्ठा रहे चाहे नहीं रहे, किन्तु आगमकी पूर्ण प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रहनी चाहिये। हमारे नाम से निकलने में उस ट्रैक्ट का अधिक उपयोग हो सकेगा। जहां आचार्य वचनों को अप्रमाण ठहरा कर उनकी प्रतिष्ठा भङ्ग की जा रही है वहां हमारी प्रतिष्ठा क्या रहती है और उसका क्या मूल्य है ? श्री० राय बहादर लाला हुलास राय जी आदि सभी सज्जनों का वैसा ही धार्मिक वात्सल्य हमारे साथ आज भी है जैसा कि उस ट्रैक्ट निकलने से पहले था। प्रत्युत चर्चा सागर के रहस्य और महत्व को समाज अब समझ चुका है। अस्तु

आज भी उसी प्रकार का प्रसङ्ग आ गया है, सञ्जद पद का उस सिद्धान्त शास्त्र के मूल सूत्र में जुड़ जाना और उस का ताम्र पत्र जैसी चिरकाल तक स्थायी प्रति में खुद जाना भारी अनर्थ और चिन्ता की बात है। कारण; उस के द्वारा द्रव्य स्त्री को उसी पर्याय से मोक्ष सिद्ध होती है यह तो स्पष्ट निश्चित है ही, साथ में सवस्त्र मुक्ति, हीन संहनन मुक्ति, बाह्य अशुद्धि में भी मुक्ति शूद्रादि के भी मुनिपद और मुक्ति प्राप्तिकी सम्भावना होना सहज होगी। एक अनर्थ दूसरे अनर्थ का साधन बन जाता है। वैसी

दशा में परम शुद्धि मुनि धर्म एवं मोक्ष पात्रता, बिना बाह्य शुद्धि के भी सर्वत्र दीखने लगेगी अथवा वास्तव में कहीं भी नहीं रहेगी ये सब अनर्थ धवल सिद्धान्त के ९३ वें सूत्र में सञ्जद पद जोड़ देने से होने वाले हैं। फिर तो सिद्धान्त शास्त्र भी दिगम्बराचार्यों की सम्पत्ति नहीं मानी जाय गी। अतः इस सिद्धान्त विघात की चिन्ता से ही हम को दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण (प्रथम भाग) नाम का ट्रैक्ट लिखना पड़ा था जो कि मुद्रित होकर सर्वत्र भेजा जा चुका है और आज इस ट्रैक्ट को लिखने के लिये भी बाध्य होना पड़ा है। श्री मान पूज्य क्षुल्लक सूरि सिंह जी महाराज. श्री मान विद्वद्वर प० राम प्रसाद जी शास्त्री भी इसी चिंता वश लेख व ट्रैक्ट लिखने में प्रयत्नशील बन चुके हैं। और इसी चिंता वश बम्बई की धर्म परायण पञ्चायत एवं वहां के प्रमुख कार्य कर्ता श्री० सेठ निरञ्जन लाल जी, सेठ चांदमल जी बक्शी सेठ सुन्दर लाल जी अध्यक्ष पंचायत प्रतिनिधि राय बहादर सेठ जुहार मल मूल चन्द जी सेठ तनसुख लाल जी काला, सेठ परमेष्ठी दास जी आदि महानुभाव हृदय से लगे हुए हैं, उन्हों ने और बम्बई पञ्चायत ने इन समस्त विशाल ट्रैक्टों के छपाने में और उभय पक्ष के विद्वानों को बुलाकर लिखित विचार (शास्त्रार्थ) कराने में मानसिक, शारीरिक एवं आर्थिक सब प्रकार की शक्ति लगाई है, इसके लिये उन सबों का जितना आभार माना जाय सब थोड़ा है। अधिक लिखना व्यर्थ है इसी सञ्जद पद की चिन्ता में जगद्वन्द्य, चारित्रचक्रवर्ती, परम पूज्य श्री १०८ आ० शान्तिसागर

जी महाराज भी विशेष चिन्तित हो गये हैं, जो कि आगम रक्षा की दृष्टि से प्रत्येक सम्यक्त्व-शाली धर्मात्मा का कर्तव्य है। जिन को इस सञ्जद पद के हटाने की चिता नहीं है उनकी दृष्टि में फिर तो श्वेताम्बर और दिगम्बर मतों में भी कोई मौलिक भेद प्रतीत नहीं होगा जैसे कि प्रो० हीरा लाल जी की दृष्टि में नहीं है।

यहां पर इतना स्पष्ट कर देना भी आवश्यक समझते हैं कि जितने भी भाव-पक्षी (जो सञ्जद पद सूत्र में रखना चाहते हैं) विद्वान हैं, वे सभी द्रव्य स्त्री को मोक्ष होना सर्वथा नहीं मानते हैं, और न वे श्वेताम्बर मत की मान्यता से सहमत हैं, उनका कहना है कि सूत्र में संयत पद द्रव्य वेद की अपेक्षा से नहीं किन्तु भाव भेद की अपेक्षा से रख लेना चाहिए। परन्तु उनका कहना इस लिये ठीक नहीं है कि जो भाव वेद की अपेक्षा वे लगाते हैं वह उस सूत्र में घटित नहीं होती है। वह सूत्र तो केवल द्रव्य स्त्री के ही गुण-स्थानों का प्ररूपक है, वहां संयत पद का जुड़ना दिगम्बर सिद्धान्त का विघातक है, आगम का सर्वथा लोपक है। वे जो गोमट्टसार की गाथाओं का प्रमाण देते हैं ते सब गाथाएँ भी द्रव्य निपरूक हैं। वे उन्हें भी भाव निरूपक बताते हैं। परन्तु वैसा उनका कहना मूल ग्रन्थ और टीका ग्रन्थ दोनों से सर्वथा बाधित है। यह बात ऐसी नहीं कि जो लम्बे चौड़े प्रमाण शून्य लेख लिखे जाने से अथवा गुणस्थान मार्गणा अनुयोग, चूर्णिसूत्र

उच्चारणसूत्र आदि सैद्धान्तिक पदों का नामोल्लेख के प्रदर्शन करने मात्र से यों ही विवाद में बनी रहे। विचारकोटि में आने पर सबों की समझ में आ जायगी। और उस तत्व के अनेक विशेषज्ञ जो हिंदी भाषा द्वारा गोमट्टसार का मर्म समझते हैं वे भी सब अच्छी तरह समझ लेंगे जो निर्णीत बात है वह अन्यथा कभी नहीं हो सकती। श्रीपं० पन्नालाल जी सोनी, श्री० पं० फूलचन्द जी शास्त्री प्रभृति विद्वान इन गोमट्टसारादि शास्त्रों के ज्ञाता हैं, फिर भी उनके, ग्रन्थाशय के विरुद्ध लेख देखकर हमें कहना पड़ता है कि या तो वे अब पक्ष-मोह में पड़ कर निष्पक्षता और आगम की भी परवा नहीं कर रहे हैं, और समझते हुए भी अन्यथा प्रतिपादन कर रहे हैं, अथवा यदि इन्होंने गोमट्टसार और सिद्धान्त शास्त्रों को केवल भाव भेदनिरूपक ही समझा है तो उन्हें पुनः उन ग्रन्थों के अन्तस्तत्व को गवेषणात्मक बुद्धि से अपने दृष्टि कोण को बदल कर मनन करना चाहिये। हम ऐसा लिख कर उन पर कोई आक्षेप करना नहीं चाहते हैं, परन्तु ग्रन्थों की स्पष्ट कथनी को देखते हुए और उस के विरुद्ध उक्त विद्वानों का कथन देखते हुए उपर्युक्त दो ही विकल्प हो सकते हैं अतः आक्षेप का सर्वथा अभिप्राय नहीं होने पर भी हमें वस्तु स्थिति वश इतना लिखना अनिच्छा होते हुए भी आवश्यक हो गया है। इस लिये वे हमें क्षमा करें।

संजद पद पर विचार

धवल सिद्धान्त शास्त्र के ९३ वें सूत्र। में संजद पद नहीं है क्यों कि वह सूत्र द्रव्य स्त्री के ही गुणस्थानों का प्रतिपादक है। परन्तु भावपक्षी सभी विद्वान एक मत से यह बात कहते हैं कि समस्त षट् खण्डागम में कहीं भी द्रव्य वेद का वर्णन नहीं है, सर्वत्र भाव-वेद का ही वर्णन है। द्रव्य स्त्री के कितने गुणस्थान होते हैं? यह बात दूसरे ग्रन्थों से जानी जासकती है, इस सिद्धान्त शास्त्र से तो केवल भाववेद में संभव जो गुणस्थान हैं उन्हीं का वर्णन है। पं० पन्नालाल जी सोनी० फूलचन्द जी शास्त्री पं० जिनदास जी न्याय तीर्थ, आदिसभी भावपक्षी विद्वान सबस मुख्य बात यही बताते हैं कि समूचा सिद्धांतशास्त्र भाव निरूपक है, द्रव्य निरूपक वह नहीं है।

सञ्जद पद को ९३ वें सूत्र में रखने के पक्ष में भाववेदी विद्वानों के चार प्रख्यात हेतु इस प्रकार हैं—

१—समूचे सिद्धान्त शास्त्र में (षट् खण्डागम में) सर्वत्र भाव वेद का ही वर्णन है, द्रव्य वेद का उसमें और गोमट्टसार में कहीं भी नहीं है?

२—आलापाधिकार में भी सर्वत्र भाव-वेद का ही वर्णन है क्योंकि उसमें मानुषी के चौदह गुणस्थान बताये गये हैं?

३—यदि षट् खण्डागम में द्रव्य वेद का वर्णन होता तो सूत्रों

में उस का उल्लेख पाया जाता, परन्तु सूत्रों में द्रव्य वेद के नाम से कोई भी कहीं उल्लेख नहीं पाया जाता है। अतः षट् खण्डागम-सिद्धान्त शास्त्र में द्रव्य वेद का कथन सर्वथा नहीं है ?

४—टीकाकारों ने जो द्रव्य वेद का निरूपण किया है वह मूल कथन से विरुद्ध है, उन्हों ने भूल की है।

ये चार हेतु प्रधान हैं जो सञ्जद पद के रखने में दिये जाते हैं।

इन चारों बातों के उत्तर में जो हम षट् खण्डागम शास्त्र के अनेक सूत्रों और धवला के प्रमाणों से यह सिद्ध करेंगे कि उक्त सिद्धान्त शास्त्र में और गोमट्टसार में द्रव्य भेद का भी मुख्यता से वर्णन है और भाव वेद के प्रकरण में भावभेद का वर्णन है।

उपर्युक्त बातों के उत्तर में हम जो प्रमाण देंगे उन्हे समझने के लिये हम यहां पर चार तालिकाएँ देते हैं, उन तालिकाओं (कुंजी) से षट् खण्डागम की कथन पद्धति, प्रकरणगत सम्बन्ध और क्रमबद्ध विवेचन का परिज्ञान पाठकों को अच्छी तरह हो जावेगा।

षट् खण्डागम के रहस्य को समझने के लिये चार तालिकाएँ (कुञ्जी)

वे चार तालिकाएँ हमने छह श्लोकों में बना दी है वे इस

प्रकार हैं—

गुणसंयमपर्याप्तियोगालापाश्च मार्गणाः ।
प्ररूपिताः यथापात्रं द्रव्यभावप्रवेदिभिः ॥१॥
गत्या सार्धं हि पर्याप्तिः योगः कायश्च यत्र वै ।
द्रव्यवेदस्तु तत्र स्याद्भावश्चान्यत्र केवलम् ॥२॥
पर्याप्तालापसामान्याऽपर्याप्तालापकाश्रयः ।
ओघादेशेषु भावेन द्रव्येणापि यथायथम् ॥३॥
मार्गणासु च यो वेदो मोहकर्मोदयेन सः ।
सूत्रेषु द्रव्यवेदस्य नामोल्लेखस्ततः कथम् ॥४॥
गत्यादिमार्गणामध्ये गुणस्थानसमन्वयः ।
देहाश्रयाद्विना न स्याद् द्रव्यवेदः स एव च ॥५॥
सूत्राशयानुरूपेण धवलायां तथैव च ।
गोमट्टसारेऽपि सर्वत्र द्रव्यवेदः प्ररूपितः । ॥६॥

(रचयिता—मक्खनलाल शास्त्री)

इनमें पहले श्लोक का यह अर्थ है कि—

गुणस्थान, संयम, पर्याप्ति, योग, आलाप, और मार्गणाएँ ये सब द्रव्य और भाव विधान के विशेषज्ञों (आचार्यों) ने द्रव्य शरीर की पात्रता के अनुसार ही प्ररूपण की हैं। अर्थात् चारों गतियों में जैसा जहां शरीर होगा, जैसी पर्याप्ति (और अपर्याप्ति) होगी, जैसा योग—काययोग या मिश्रकाय होगा और जैसा आलाप—पर्याप्त, अपर्याप्त, सामान्य-होगा उसी के अनुसार उसमें गुणस्थान और संयम रह सकेंगे। इसी सिद्धान्त को लेकर

आचार्यों ने षट् खण्डागम में मार्गणाओं और आलापों में गुणस्थानों का समन्वय किया है।

दूसरे श्लोक का अर्थ यह है कि—

जहां पर गतियों का कथन पर्याप्तियों के सम्बन्ध से कहा गया है वहां पर द्रव्य वेद के कथन की प्रधानता समझना चाहिये इसी प्रकार जहां तक योग मार्गणा, और काय का कथन है वहां तक निश्चय से द्रव्य वेद के कथन का ही प्राधान्य है। और जहां पर गति के साथ पर्याप्ति का सम्बन्ध नहीं है तथा योग और काय मार्गणाका भी कथन पर्याप्त के साथ नहीं है वहां केवल भाववेद के कथन की ही प्रधानता समझनी चाहिये।

इन दो श्लोकों से षट् खण्डागम के सत्प्ररूपणा रूप अनुयोग द्वार का विवेचन बताया गया है जो धवल सिद्धान्त के प्रथम भाग में आदि के १०० सूत्रों तक किया गया है।

इस कथन से—सर्वथा भाववेद ही षट् खण्डागम में सर्वत्र कहा गया है उसमें द्रव्यवेद का वर्णन कहीं नहीं है इस वक्तव्य और समझ का पूर्ण निरसन हो जाता है।

तीसरे श्लोक का अर्थ यह है कि—

आलाप के आचार्यों ने तीन भेद बताये हैं १-पर्याप्त. २-अपर्याप्त ३-सामान्य। इनमें अपर्याप्तालाप के निर्वृत्यपर्याप्तक और लब्ध्यपर्याप्तक ऐसे दो भेद हो जाते हैं। इस अपेक्षा से आलाप के ४ भेद हैं। बस; मार्गणा, गुणस्थान, की बीस प्ररूपणा रूप से इन्हीं चार भेदों में योजना (समन्वय) की गई है। इसमें

यथा संभव भाववेद और द्रव्यवेद दोनों की विवक्षा से वर्णन किया गया है।

इस श्लोक से यह बात प्रगट की गई है कि आलापों में पर्याप्त अपर्याप्त और सामान्य इन तीन बातों की प्रधानता से कथन है उनमें जहां तक जो संभव गुणस्थान उपयोग पर्याप्ति प्राण आदि हो सकते हैं वे सब ग्रहण कर लिये जाते हैं, उस ग्रहण में कहीं द्रव्यवेद की विवक्षा आ जाती है, कहीं पर भाववेद की आ जाती है।

इस कथन से वह शंका और समझ दूर हो जाती है जोकि यह कहा जाता है कि "आलापों में भाववेद का ही सर्वत्र वर्णन है मानुषी के चौदह गुणस्थान बतलाये गये हैं" वह शङ्का इस लिये नहीं हो सकती है कि आलापों में ही मानुषी की अपर्याप्त अवस्था में पहला दूसरा ये दो गुणस्थान बताये गये हैं, भाव की अपेक्षा ही होता तो सयोग गुणस्थान भी बताया जाता। अतः सर्वत्र आलापों में भाववेद का ही कथन है यह कहना असङ्गत एवं ग्रन्थाधार से विरुद्ध है।

चौथे श्लोक का अर्थ यह है कि—

मार्गणाओं में एक वेद मार्गणा भी है, वहां मोहनीय कर्म का भेद नोकषाय-जनित परिणाम रूप ही वेद लिया गया है। और कहीं पर-गुणस्थान मार्गणाओं में द्रव्यवेद का ग्रहण नहीं है फिर षट् खण्डागम सूत्रों में द्रव्य-वेद का नामोल्लेख करके कथन कैसे किया जासकता है? अर्थात षट् खण्डागम में गुण-

स्थान और मार्गणाओं का ही यथायोग्य समन्वय बताया गया है। उन में द्रव्यवेद कहीं पर आया नहीं है। इस लिये प्रतिज्ञात क्रम वर्णन पद्धति में द्रव्यवेदों का नामोल्लेख किया नहीं जा सकता है।

इस कथन से—षट खण्डागम में यदि द्रव्यवेद का कथन होता तो सूत्रों में द्रव्यवेद का उल्लेख होता—इस शंका और समम्न का निरसन हो जाता है।

फिर यह शंका और पड़ जाती है कि जब द्रव्यवेद का सूत्रों में नामोल्लेख नहीं है तब उसकी विवक्षा से उन में कथन भी नहीं है केवल भाववेद की विवक्षा से ही कथन है इस शंका का निरसन पांचवें श्लोक से किया गया है।

पांचवें श्लोक का अर्थ यह है कि—

गति, इन्द्रिय काय योग इन मार्गणाओं में जो गुणस्थानों का समन्वय बताया गया है वह द्रव्य शरीरों के आधार से ही बताया गया है। बिना द्रव्य शरीरों की विवक्षा किये वह कथन बन ही नहीं सकता है और द्रव्य शरीर ही द्रव्य वेद का अपर पर्याय है। द्रव्य शरीर और द्रव्य वेद दोनों का एक ही अर्थ है। इस से यह बात सिद्ध हो जाती है कि द्रव्यवेद का सूत्रों में नामोल्लेख नहीं होने पर भी उसका कथन पर्याप्ति आदि के कथन में द्रव्यवेद का कथन गर्भित हो जाता है। अत एव द्रव्यवेद की विवक्षा पर्याप्ति आर दोनों के कथन में की गई है।

छठे श्लोक का अर्थ यह है कि—

जो कुछ गोमट्टसार के सूत्रों का आशय है उसी के अनुसार

धवला कार ने धवला टीका में तथा गोमट्टसारकार तथा गोमट्टसार के टीका-कार ने भी सर्वत्र द्रव्य-वेद का भी निरूपण किया है। जो विद्वान यह कहते हैं कि 'टीकाकारों ने मूल ग्रन्थ में जो द्रव्यवेदादि की बातें नहीं हैं वे स्वयं अपनी समझ से लिख दी है अथवा उन्होंने भूल की है' ऐसी मिथ्या बातों का निरसन इस श्लोक से हो जाता है। क्योंकि टीकाकारों ने जो भी अपनी टीकाओं में सूत्र अथवा गाथा का विशद अर्थ किया है वह सूत्र एवं गाथा के आशय के अनुसार ही किया है।

बस इन्हीं तालिकाओं के आधार पर षटखण्डागम, गोमट्टसार तथा उनकी टीकाओं को समझने की यदि जिज्ञासा और ग्रन्थ के अनुकूल समझने का प्रयत्न किया जायगा तो भाववेद और द्रव्यवेद दोनों का कथन इन शास्त्रों में प्रतीत होगा। हम आगे इस ट्रेक्ट में इन्हीं बातों का बहुत विस्तृत स्पष्टीकरण षट-खण्डागम के अनेक सूत्रों एवं गोमट्टसार की अनेक गाथाओं तथा उन की टीकाओं द्वारा करते हैं।

षट् खण्डागम के धवला प्रथम-खण्ड में वर्णन क्रम क्या है?

षट खण्डागम के जीवस्थान-सत्प्ररूपणा नामक धवला के प्रथम खण्ड में किस बात का वर्णन है। और वह वर्णन प्रारंभ से लेकर अंत तक किस क्रम से ग्रन्थकार-आचार्य भूतबली पुष्प-दन्त ने किया है, सबसे पहले इसी बात पर लक्ष्य देना चाहिये

साथ ही विशेष लक्ष्य सत्प्ररूपणा के प्रारंभ में बताये गये मूलभूत जीव विशिष्ट-शरीरों की पात्रता के अनुसार गुणस्थान विचार, और आदि की चार मार्गणाओं द्वारा निर्दिष्ट कथन पर देना चाहिये। फिर सिद्धान्त शास्त्र का रहस्य समझ में सहज आ जायगा। इसी को हम यहां बताते हैं—

१४ मार्गणाओं और १४ गुणस्थानों में किस २ मार्गणा में कौन २ गुणस्थान संभव हो सकते हैं, बस यही बात षटखण्डागम की धवला टीका के प्रथम खण्ड में घटित की गई है। कर्मों के उदय उपशम क्षय क्षयोपशम और योग के द्वारा उत्पन्न होने वाले जीवों के भावों का नाम गुणस्थान है तथा कर्मोदय-जनित जीव की अवस्था का नाम मार्गणा है। किन २ अवस्थाओं में कौन २ संभाव जीव के हो सकते हैं, बस इसी को मार्गणाओं में गुणस्थानों का संघटन कहते हैं। यही बात धवल सिद्धान्त के प्रथमखण्ड में बताई गई हैं।

यहां पर इतना विशेष समझ लेना चाहिये कि चौदह मार्गणाओं में आदि की ४ मार्गणाएँ जीव के शरीर से ही सम्बन्ध रखती हैं इसलिये गति, इन्द्रिय, काय और योग इन चार मार्गणाओं में द्रव्य वेद के साथ ही गुणस्थान बताये गये हैं।

जैसे गति मार्गणा में चारों गतियों के जीवों का वर्णन है, उसमें नारकी तिर्यञ्च मनुष्य और देव इन चारों शरीर पर्यायों का समावेश है।

इन्द्रिय मार्गणा में एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय आदि इन्द्रिय सम्बन्धी शरीर रचना का कथन है।

काय मार्गणा में औदारिक वैक्रियिक आदि शरीरों का कथन है, योग मार्गणा में औदारिक काय योग, औदारिक मिश्र काय योग, वैक्रियिक काय योग वैक्रियिक मिश्र काय योग आदि विवेचन द्वारा शरीर की पूर्णता और अपूर्णता के साथ योगों का कथन है। इन्हीं भिन्न २ द्रव्य शरीर के साथ गुणस्थान बताये गये हैं। परन्तु इस से आगे वेद मार्गणा में नो कषाय के उदय स्वरूप वेदो में गुणस्थान बताये गये हैं, वहां पर द्रव्य शरीर के वर्णन का कोई कारण नही है। इसी प्रकार कषाय मार्गणा में कषायोदय विशिष्ट जीव में गुणस्थान बताये गये हैं, वहां पर भी द्रव्य शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं है ज्ञान मार्गणा में भी द्रव्य शरीर का कोई सम्बन्ध नहीं है वहां पर भिन्न २ ज्ञानो में गुणस्थान बताये गये हैं; इस प्रकार वेद, कषाय, ज्ञान, आदि मार्गणाओं में गुणस्थानो का कथन भाव की अपेक्षा से हैं वहां पर द्रव्य शरीर का सम्बन्ध नहीं है। किन्तु आदि की चार मार्गणाओं का कथन मुख्य रूप से द्रव्य शरीर का ही विवेचक है अतः वहां तक भाववेद की कुछ भी प्रधानता नहीं है, केवल द्रव्य-वेद की ही प्रधानता है।

इसी बात का स्पष्टीकरण षट्खण्डागम की जीवस्थान सत्प्ररूपणा के प्रथम खण्ड धवल सिद्धांत के अनुयोग द्वारों से

हम करते हैं—

धवल सिद्धांत में जिन मार्गणाओं में गुणस्थानों को घटित किया गया है वह आठ अनुयोग द्वारों से किया गया है वे आठ अनुयोग द्वार ये हैं—

१-सत्प्ररूपणा २-द्रव्य प्रमाणानुगम ३-क्षेत्रानुगम ४-स्पर्शानुगम ५-कालानुगम ६-अन्तरानुगम ७-भावानुगम ८-अल्प-बहुत्वानुगम।

इन आठों का वर्णन क्रम से ही किया गया है, उनमें सबसे पहिले सत्प्ररूपणा अनुयोग द्वार है उसका अर्थ धवलाकारने वस्तु के अस्तित्व का प्रतिपादन करने वाली प्ररूपणा को सत्प्ररूपणा बताया है। जैसा कि—

'अत्थित्तं पुण संतं अत्थित्तस्सय तदेवपरिमाणं।' इस गाथा द्वारा स्पष्ट किया है। जैसाकि—सत्सत्वमित्यर्थः कथमन्तर्भावित-भावत्वात। इस विवेचन द्वारा धवलाकार ने स्पष्ट किया है इसका अर्थ यह है कि सत्प्ररूपणा में सत् का अर्थ वस्तु की सत्ता है। क्योंकि वस्तु की सत्ता में भाव अन्तर्भूत रहता है। इससे स्पष्ट है कि—सत्प्ररूपणा अनुयोगद्वार जीवों के द्रव्य शरीर का प्रतिपादन करता है, द्रव्य के बिना भाव का समावेश नहीं हो सकता है। जिस वस्तु के मूल अस्तित्व का बोध हो जाता है उस वस्तु की संख्या का परिमाण द्रव्य प्रमाणानुगम द्वारा बताया गया है ये दोनों अनुयोग द्वार मूल द्रव्य के अस्तित्व और उसकी संख्या

को बताते हैं। आगे के अनुयोग द्वार उस वस्तु के क्षेत्र, स्पर्श, काल आदि का बोध कराते हैं। धवल सिद्धांत के क्रमवर्ती विवेचन को देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि धवल सिद्धांत में पहले द्रव्यवेद विशिष्ट शरीरों का निरूपण किया गया है और उन्हीं द्रव्य शरीर विशिष्ट जीवों की गणना बताई गई है। बिना मूल भूत द्रव्यवेद के निरूपण किये, भाववेद का निरूपण नहीं हो सकता है: और उसी प्रकार का निरूपण धवल शास्त्र में किया गया है।

इस प्रकरण में धवल सिद्धांत में पहले चौदह गुणस्थानों के निरूपक सूत्र हैं, उनके पीछे १४ मार्गणाओं का कथन सूत्रों द्वारा किया गया है, इस कथन में द्रव्यवेद के सिवा भाववेद का कुछ भी वर्णन नहीं है। आगे उन १४ मार्गणाओं में गुणस्थान घटित किये गये हैं, वे गुणस्थान उन मार्गणाओं में उसी रूप से घटित किये गये हैं जहां जो द्रव्य शरीर में हो सकते हैं। और आगे की वेद मार्गणा, कषाय मार्गणा, ज्ञानमार्गणा आदि मार्गणाओं में केवल आत्मीय भावों का (वैभाविक और स्वाभाविक) ही सम्बन्ध होने से चौदह गुणस्थानों का समावेश किया गया है। आचार्य भूतबली पुष्पदन्त ने सत्प्ररूपणा रूप अनुयोग द्वार को ही ओघ और आदेश अर्थात मार्गणा और गुणस्थान इन दो कोटियों में विभक्त कर दिया है। और समूचे ग्रन्थ में मार्गणाओं को आधार बनाकर गुणस्थानों को यथा सम्भव रूप से

घटित किया है जैसा कि — संत परूपण द्वारा दुविहो णिद्देसो ओघेण आदेसेण च। (सूत्र ८ पृष्ठ ८० धवला)

इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि सत्प्ररूपणा अनुयोग द्वार द्रव्य शरीर का निरूपण करता है। क्योंकि भाववेद द्रव्याश्रित है। द्रव्य शरीर को छोड़कर भाववेद का निरूपण अशक्य है।

इन्हीं सब बातों का खुलासा हम षटखण्डागम धवल सिद्धांत के अनेक सूत्रों का प्रमाण देकर यहां करते हैं—

आदेसेण गदियाणुवादेण अत्थि णिरयगदी तिरिक्खगदी मणुस्सगदी देवगदी सिद्धगदी चेदि।

(सूत्र २४ पृष्ठ १०१ धवला)

अर्थात मार्गणाओं के कथन की विवक्षा से पहिले गति मार्गणा में चारों गतियों का सामान्य कथन है नरक गति तिर्यंचगति मनुष्यगति देवगति और सिद्धगति ये पांच गतियां सूत्रकार बताते हैं। इन में अन्तिम सिद्धगति को छोड़कर बाकी चारों ही गतियों का निरूपण शरीर सम्बन्ध से है। इसके आगे के २५वें सूत्र से लेकर २८वें सूत्र तक चारों गतियों में सामान्य रूप से गुणस्थान घटित किये गये हैं तथा सूत्र २९ से लेकर सूत्र ३२ तक चारों गतियों के गुणस्थानों का कुछ विशेष सम विषम वर्णन है गतिमार्गणामें तिर्यंचगतिमें पांच गुणस्थान कहे हैं सूत्र यह है—

तिरिक्खा पंचसु ठाणेसु अत्थि मिच्छाइट्ठी, सासण

सम्माइट्टी सम्मामिच्छाइट्ठी असंजद सम्माइट्ठी संजदासंजदात्ति (सूत्र २६ पृ० १०४ धवल सिद्धांत) अर्थ सुगम है। इस सूत्र को धवला को पढ़िये—

कथं पुनरसंयत—सम्यग्दृष्टीनामसत्त्वमिति न तत्राऽसंयत-सम्यग्दृष्टीनां मुत्पत्तेरभावात् तत्कुतोऽवगम्यत इतिचेत् छसुहेट्ठिमासु पुढवीसु जोइसिवण भवण सव्व इत्थीसु णेदेसु समुप्पज्जइ सम्माइट्ठीदु जो जीवो। इत्यार्षात्। (पृ० १०५ धवल)

इस धवला टीका का स्पष्ट अर्थ यह है कि— तिर्यञ्चिनियों के अपर्याप्त काल में असंयत सम्यग्दृष्टि जीवों का अभाव कैसे माना जा सकता है? इस शंका के उत्तर में कहा जाता है कि नहीं, यह शंका ठीक नहीं क्योंकि तिर्यंचिनियों में असयत सम्यग्दृष्टियों की उत्पत्ति नहीं होती है इसलिये उनके अपर्याप्तकाल में चौथा गुणस्थान नहीं पाया जाता है। यह कैसे जाना जाता है?

उत्तर—जो सम्यग्दृष्टि जीव होता है वह प्रथम पृथिवीको छोड़ कर नीचे की छह पृथिवियों में, ज्योतिषी, व्यन्तर और भवनवासी देवोंमें और सब प्रकार की स्त्रियोंमें उत्पन्न नहीं होता है। इस आर्षवचन से जाना जाता है। यहां पर उत्पत्ति का कथन है। और देवियां मानुषी तथा तिर्यंचिनी तीनों (सब) प्रकार की स्त्रियों का स्पष्ट कथन है यह द्रव्य स्त्री वेद का स्पष्ट कथन है। यह अर्थ वाक्य है।

इसके आगे इन्द्रियानुवाद की अपेक्षा वर्णन है वह इस

प्रकार है—

इंदियाणुवादेण अत्थि एइंदिया बीइंदिया तीइंदीया चदुरिं-दिया पंचिंदिया अणिंदिया चेदि ।

(सूत्र ३३ पृष्ठ ११६ धवला)

इसका अर्थ सुगम है। यहां पर हम इतना कह देना आव-श्यक समझते हैं कि उसी सूत्र का हम विशेष खुलासा करेंगे जो सुगम नहीं होगा। और उन्हीं सूत्रों को प्रमाण में देंगे जिनसे प्रकृत विषय द्रव्य शरीर सिद्धि की उपयुक्तता और स्पष्टता विशेष रूप से होगी, यद्यपि सभी सूत्र योग मार्गणा तक द्रव्य शरीर के ही प्रतिपादक हैं परन्तु सभी सूत्रों को प्रमाण में रखने से यह लेख बहुत अधिक बढ़ जायगा। उसी भय से हम सभी सूत्रों का प्रमाण नहीं देंगे। हां जिन्हें कुछ भी संदेह होवे षटखण्डागम को निकालकर देख लेवें। अस्तु।

ऊपर के सूत्र में एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीवों का कथन सर्वथा द्रव्य शरीर का ही निरूपक है। भाववेद की विवक्षा तक नहीं है। इसका खुलासा देखिये—

एइंदिया दुविहा बादरा सुहमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अ-पज्जत्ता। सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता।

(सूत्र ३४ पृष्ठ १२५ धवला)

अर्थ सुगम है। ये एकेन्द्रिय जीवों के बादर सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त केवल द्रव्यवेद अथवा द्रव्य शरीर की अपेक्षा से

ही किये गये हैं। यहां पर भाववेद का कोई उल्लेख नहीं है। धवला टीका में इस बात का पूर्ण खुलासा है। परन्तु सूत्र ही स्पष्ट कहता है, तब धवला का उद्धरण देना अनुपयोगी और लेख को बढ़ाने का साधक होगा। अतः छोड़ा जाता है।

इसके आगे—

बीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता, तीइंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। चतुरिंदिया दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। पंचिंदिया दुविहा सण्णी असण्णी। सण्णी दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता। असण्णी दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता चेदि।

(सूत्र ३५ पृष्ठ १२६ धवला)

अर्थ सुगम है—

ये सभी भेद द्रव्य शरीर के ही हैं। भाव पक्षी सभी विद्वान इस षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र को समूचा भाववेद का ही कथन करने वाला बताते हैं और विद्वत्समाज को भी भ्रम में डालने का प्रयास करते हैं वे अब नेत्र खोलकर इन सूत्रों को ध्यान से पढ़ लेवें। इन सूत्रों में भाववेद की गन्ध भी नहीं है। केवल द्रव्य शरीर के ही प्रतिपादक हैं।

इसके आगे उन्हीं एकेन्द्रियादि जीवोंमें गुणस्थान बताये हैं। जो सुगम और निर्विवाद हैं। यहां उनका उल्लेख करना व्यर्थ है।

इसके आगे कायमार्गणाको भी ध्यानसे पढ़ें कायाणुवादेण

अत्थि पुढविकाइया, आउकाइया, तेउकाइया, वाउकाइया, वण-प्फइकाइया तसकाइया अकाइया चेदि ।

(सूत्र ३९ पृष्ठ १३२ धवला)

अर्थ सुगम और स्पष्ट है—

ये सभी भेद द्रव्य शरीर के ही हैं। भाववेद का नाम भी यहां नहीं है।

इसके आगे—

पुढविकाइया दुविहा बादरा सुहुमा। बादरा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता सुहुमा दुविहा पज्जत्ता अपज्जत्ता आदि।

(सूत्र ४०–४१ पृष्ठ १३४–१३५)

अर्थ सुगम है—

यह लम्बा सूत्र है और पृथिवीकाय आदि से लेकर वनस्पति-काय पर्यंत साधारण शरीर, प्रत्येक शरीर, सूक्ष्म बादर पर्याप्त, अपर्याप्त आदि भेदों का विवेचन करता है। दूसरा ४१वां सूत्र भी इन्हीं भेदों का विवेचक है। यह विवेचन भी सब द्रव्यवेद का ही है।

आगे इन्हीं पृथिवी काय और त्रस कायों में गुणस्थान बताये गये हैं जो सुगम और स्पष्ट एवं निर्विवाद हैं। जिन्हें देखना हो वे ४३वें सूत्र से ४५वें सूत्र तक धवल सिद्धांत को देखें।

९३वें सूत्रका मुख्य विषय योगमार्गणा है।
संयतपद सूत्र में सर्वथा असंभव है।

अब क्रम से वर्णन करते हुए योग मार्गणा का विवेचन करते हैं, उसी योग मार्गणा के भीतर ९३वां सूत्र है। और वह द्रव्यस्त्री के स्वरूप का ही निरूपक है। क्रमबद्ध प्रकरण को पक्ष-मोह शून्य सद्बुद्धि और ध्यान से पढ़ने से यह बात साधारण जानकार भी समझ लेंगे कि यह कथन द्रव्य शरीर का ही निरूपक है। क्रम पूर्वक विवेचन करने से ही समझमें आसकेगा इसलिये कुछ सूत्र क्रम से हम यहां रखते हैं पंछे ९३वां सूत्र कहेंगे।

जोगाणुवादेण अत्थि मणजोगी, वचि जोगी, काय जोगी चेदि। (सूत्र ४७ पृष्ठ १३९ धवल)

अर्थ सुगम है—

धवलाकार ने द्रव्य मन और भाव मन के विवेचन से यह स्पष्ट कर दिया है कि यह सब कथन द्रव्य शरीर का है।

इसके आगे मनोयोग के सत्य असत्य आदि चार भेदों का और उनमें सम्भावित गुणस्थानों का विवेचन किया गया है। उसी प्रकार आगे के सूत्रों में वचन योग के भेदों और गुणस्थानों का वर्णन है। ५६वें सूत्र में शंख के समान धवल और हस्त प्रमाण आहारक शरीर वर्णन है। यह द्रव्य शरीर का विधायी स्पष्ट कथन है।

इसके आगे षटखण्डागम धवलसिद्धांत के सूत्र ५६ से लेकर सूत्र १०० तक काययोग और मिश्र काययोगों के भेद और उनमें सम्भव गुणस्थानों का वर्णन है। जो कि पुद्गल विपाकी नामा नामकर्म के उदय से मन वचन काय वर्गणाओं में से किसी एक वर्गणा के अवलम्बन से कर्म नोकर्म खींचने के लिये जो आत्म-प्रदेशों का हलन चलन होता है वही योग है जैसा कि धवला में कहा है। वह हलन चलन भाववेद में अशक्य है। काययोग और मिश्र काययोग के सम्बन्ध से इन्हीं सूत्रों में छह पर्याप्तियों का भी वर्णन है जो द्रव्यवेद में ही घटित है। भाववेद में उनका घटित होना शक्य नहीं है। इससे स्पष्ट रूप से सभी समझ लेंगे कि ९३वां सूत्र द्रव्य स्त्री के ही गुणस्थानों का विधायक है। वह भाववेद का सर्वथा विधायक नहीं है। अतः उस सूत्रमें सञ्जद पद सर्वथा नहीं है यह निःसंशय एवं निश्चित सिद्धांत है। इसी मूल बात का निर्णय योग मार्गणा के सूत्रों का प्रमाण देकर और पर्याप्तियों के प्ररूपक सूत्रों का प्रमाण देकर हम स्पष्टता से कर देते हैं—

कम्मइय कायजोगो विग्गहगइ समावण्णाणं केवलीणं वा समुग्घादगदाणं। (सूत्र ६० पृष्ठ १४९ धवल सिद्धांत)

अर्थात्—कार्माण काययोग विग्रह गति में रहने वाले चारों गतियों के जीवों के होता है और केवली भगवान के समुद्धात अवस्था में होता है। इस विग्रह गति के कथन से स्पष्ट सिद्ध है

कि यह वर्णन द्रव्य शरीर का ही है।

आगे इन्हीं मार्गणाओंमें गुणस्थान घटित किये गयेहैं। यहां विशेष ध्यान देने योग्य बात यह है कि इसी काययोगके निरूपण में आचार्य भूतबली पुष्पदन्त ने पर्याप्तियों का सम्बन्ध बताया है जैसा कि सूत्र है—

कायजोगो पज्जत्ताण वि अत्थि, अपज्जत्ताण वि अत्थि।

(सूत्र ६६ पृष्ठ १५५ धवल)

अर्थ सुगम है—

इसी सूत्र की धवला टीका में आचार्य वीरसेन स्वामी लिखते हैं कि—

पर्याप्तस्यैव एते योगाः भवन्ति, एते चोभयोरिति वचन-माकर्ण्य पर्याप्ति-विषयजात-संशयस्य शिष्यस्य सन्देहापोहनार्थ-मुत्तरसूत्राण्यभाणीत 'छ पज्जत्तीओ छ अपज्जत्तीओ।'

(सूत्र ७० पृष्ठ १५६ धवल सिद्धांत)

यहां पर आचार्य वीरसेन ने पर्याप्तियों का विधायक सूत्र देखकर यह भूमिका प्रगट की है कि ये योग पर्याप्त जीव के ही होते हैं और ये योग पर्याप्त अपर्याप्त जीवों के होते हैं। इस सूत्र निर्दिष्ट वचन को सुनकर शिष्य को पर्याप्तियों के विषय में संशय खड़ा हो गया, उसी संशय के दूर करने के लिये आचार्य भूतबलि पुष्पदन्त ने पर्याप्तियों के विधायक सूत्र कहे हैं— सूत्र में छह पर्याप्तियां और छह अपर्याप्तियां बताई गई है। पर्याप्ति के

लक्षण को स्पष्ट करते हुए धवलाकार कहते हैं कि—

आहार-शरीरेन्द्रियोच्छ्वासनिःश्वास-भाषामनसां निष्पत्तिः पर्याप्तिः ताश्च षट् भवन्ति।

अर्थात् आहार, शरीर, इंद्रिय, उच्छ्वासनिःश्वास, भाषा और मन इन छह की उत्पत्ति होना ही पर्याप्ति है ये पर्याप्तियां छह होती हैं। इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि यह पर्याप्तियों का वर्णन और उनमें गुणस्थानों का समन्वय द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है। भाववेद में इन पर्याप्तियों की उत्पत्ति का कोई सम्बन्ध नहीं है। हां पूर्ण शरीर और अपूर्ण शरीर के सम्बन्ध से भाववेद भी आधार आधेय रूप से घटित किया जाता है परन्तु इन पर्याप्तियों का मूल द्रव्य शरीर की उत्पत्ति और प्राप्ति है। अतः इन पर्याप्तियों के सम्बन्ध से जो आगे के सूत्रों में कथन है वह सब द्रव्य शरीर का ही है इसका भी स्पष्टीकरण नीचे के सूत्रों से होता है—

सण्णिमिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव असंजद सम्माइट्ठि त्ति। सूत्र ७१

पंच पज्जतीओ पंच अपज्जत्तीओ सूत्र ७२।

बीइन्दियप्पहुडि जाव असण्णि पंचिंदियात्ति। सूत्र ७३

चत्तारि पज्जत्तीओ चत्तारि अपज्जत्तीओ। सूत्र ७४

एइंदियाणं सूत्र ७५। (पृष्ठ १५६-१५७ धवल)

अर्थ—यह सभी-छहों पर्याप्तियां संज्ञी मिथ्यादृष्टि गुणस्थान तक होती हैं। तथा द्वीन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पंचेन्द्रिय

जीवों पर्यंत मन को छोड़कर शेष पांच पर्याप्तियां होती हैं। तथा भाषा और मन इन दो पर्याप्तियों को छोड़कर बाकी चार पर्याप्तियां एकेन्द्रिय जीवों के होती हैं। इन सबों के जैसे नियत पर्याप्तियां होती हैं वैसे ही अपर्याप्तियां भी होती हैं।

इन छह पर्याप्तियों की समाप्ति चौथे गुणस्थान तक ही आ० भूतबलि पुष्पदन्त ने बताई है। इसका खुलासा धवलाकार ने अनेक शङ्कायें उठाकर यह कर दिया है कि चौथे गुणस्थान से ऊपर पर्याप्तियां इसलिये नहीं मानी गई हैं कि उनकी समाप्ति चौथे तक ही हो जाती है अर्थात् चौथे गुणस्थान तक ही जन्म मरण होता है इसी बात की पुष्टि में यह बात भी कही गई है कि सम्यक्‌मिथ्यादृष्टि तीसरे गुणस्थान में भी ये पर्याप्तियां नहीं होती हैं क्योंकि उस गुणस्थान में अपर्याप्तकाल नहीं है अर्थात् तीसरे मिश्र गुणस्थान में जीवों का मरण नहीं होता है। इस कथन से यह स्पष्ट है कि यह पर्याप्तियों का विधान और विवेचन द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है।

यदि द्रव्य शरीर और जन्म मरण से सम्बन्ध इन पर्याप्तियों का नहीं माना जावे तो चौथे गुणस्थान तक ही सूत्रकार ७१वें सूत्र द्वारा इनकी समाप्ति नहीं बताते किन्तु १३वें गुणस्थानतक बताते। इसी प्रकार असंज्ञीजीव तक मनको छोड़कर पांच और एकेन्द्रिय जीव में भाषा और मन दोनों का अभाव बताकर केवल चार पर्याप्तियों का विधान सूत्रकार ने किया है इससे भी स्पष्ट है कि

यह विवेचन द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है। क्योंकि असंज्ञीजीव के मन और एकेन्द्रिय जीव के भाषा की उत्पत्ति नहीं होती है।

इस प्रकार सूत्रकार ने योगों के बीच में सम्बन्ध–प्राप्त पर्याप्तियों का स्वरूप और उनका एकेन्द्रियादि जीवों के भिन्न २ द्रव्य शरीरों के साथ सम्बन्ध एवं गुणस्थानों का निरूपण करके उन्हीं औदारिकादि काययोगों को पर्याप्तियों और अपर्याप्तियों में बटाया है वह इस प्रकार है—

ओरालिय कायजोगो पज्जत्ताणं ओरालिय मिस्स कायजोगो अपज्जत्ताणं। सूत्र ७६

वेउव्विय कायजोगो पज्जत्ताणं वेउव्विय मिस्स काय जोगो अपज्जत्ताणं। सूत्र ७७

आहार कायजोगो पज्जत्ताणं आहार मिस्स काय जोगो अपज्जत्ताणं। सूत्र ७८

(पृष्ठ १५८-१५६ धवल)

अर्थ सुगम और स्पष्ट है।

इन सूत्रों की व्याख्या में धवलाकार ने यह बात स्पष्ट करदी है कि जब तक शरीर पर्याप्ति निष्पन्न नहीं हो पाती तब तक जीव अपर्याप्त (निर्वृत्त्यपर्याप्तक) कहा जाता है। इससे स्पष्ट है कि यह सब कथन द्रव्य शरीर की रचना और उसकी पूर्णता से सम्बन्ध रखता है।

इसी प्रकार वैक्रियिक मिश्र में अपर्याप्त अवस्था बताकर अपर्याप्त अवस्था में कार्माण काययोग भी बताया गया है। यह बात भी शरीरोत्पत्ति से ही सम्बन्ध रखती है।

आहार शरीर के सम्बन्ध में तो धवलाकार ने और भी स्पष्ट किया है कि—

आहारशरीरोत्थापकः पर्याप्तः संयतत्वान्यथानुपपत्तेः।

(धवला पृष्ठ १५६)

अर्थात् आहार शरीर को उत्पन्न करने वाला साधु पर्याप्तक ही होता है। अन्यथा उसके संयतपना नहीं बन सकता है इसका तात्पर्य यही है कि औदारिक शरीर की रचना तो उसके पूर्ण हो चुकी है, नहीं तो उसके संयम कैसे बनेगा। केवल आहारक शरीर की रचना अपूर्ण होने से उसे अपर्याप्त कहा गया है। इस से औदारिक द्रव्य शरीर को ही आधार मानकर आहारक शरीर की अपर्याप्ति का विधान सूत्रकार ने किया है। यह बात खुलासा हो जाती है। इसी सम्बन्ध में धवलाकार ने यह भी कहा है कि-

भवत्वसौ पर्याप्तकः औदारिकशरीरगतषटपर्याप्त्यपेक्षया, आहारशरीरगतपर्याप्तिनिष्पत्यभावापेक्षया त्वपर्याप्तकोऽसौ।

(पृष्ठ १५६)

अर्थात्—औदारिक शरीरगत षटपर्याप्तियों की पूर्णता की अपेक्षा तो वह छठे गुणस्थानवर्ती साधु पर्याप्तक ही है, किन्तु आहार शरीर गत पर्याप्तियों की पूर्णता नहीं होनेसे वह अपर्याप्त

कहलाता है।

यहां पर धवलाकार ने—"औदारिक शरीरगत षटपर्याप्ति और आहार शरीर गत पर्याप्ति" इन पदों को रखकर बहुत स्पष्ट कर दिया है कि यह योग और पर्याप्ति सम्बन्धी सब कथन द्रव्य शरीर अथवा द्रव्यवेद से ही सम्बन्ध रखता है। भाववेद से इस का कोई सम्बन्ध नहीं है। और यहां पर भाववेद की अपेक्षा कोई विचार भी नहीं किया गया है।

इसके आगे उन्हीं योग और पर्याप्तियों के समन्वय को घटित करके जगदुद्धारक अंगैकदेश ज्ञाता आचार्य भूतबलि पुष्प-दन्त भगवान पर्याप्तियों के साथ गति आदि मार्गणाओं में गुण-स्थानों का समन्वय दिखाते हैं।

णेरइया मिच्छाइट्ठि असंजद सम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्तगा सिया अपज्जत्तगा। (सूत्र ७९ पृष्ठ १६० धवल)

अर्थ सुगम है—

इस सूत्र द्वारा नारकियों की अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यादृष्टि और असंयत सम्यग्दृष्टि—पहला और चौथा ऐसे दो गुणस्थान बताये हैं। पहला तो ठीक ही है परन्तु चौथा गुणस्थान अपर्याप्त अवस्था में प्रथम नरक की अपेक्षा से कहा गया है। क्योंकि सम्यग्दृष्टि मरकर सम्यग्दर्शन के साथ पहले नरक को जा सकता है यह बात सभी जैन विद्वत्समाज जानता होगा अतः इस के लिये अधिक प्रमाण देना व्यर्थ है और उससे यहां यही

सूत्र प्रमाण है। यहां पर भी विचार करने पर यह सिद्ध होता है कि नारकियों की प्रथम नरक की सम्यक्त्व सहित उत्पत्ति को लक्ष्य करके ही यह ७९वां सूत्र कहा गया है अतः वह द्रव्य प्रति-पादक है। जैसा कि— समस्त पीछे के सूत्रों द्वारा एवं पर्याप्ति अपर्याप्ति निरूपण के प्रकरण द्वारा हमने स्पष्ट किया है। इसी का और भी स्पष्टीकरण इससे आगे के सूत्र में देखिये।

सासणसम्माइट्ठि सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता।

(सूत्र ८० पृष्ठ १६० धवल सिद्धांत)

अर्थ—नारकियों में दूसरा और तीसरा (सासादन और मिश्र) गुणस्थान नियम से पर्याप्त अवस्था में ही होता है। इस सूत्र की व्याख्या करते हुए धवलाकार स्पष्ट रूप से कहते हैं कि—

नारकाः निष्पन्नषट्पर्याप्तयः सन्तः ताभ्यां गुणाभ्यां परिणमन्ते नापर्याप्तावस्थायाम्। किमिति तत्र तौ नोत्पद्येते इति चेत्तयोस्तत्रोत्पत्तिनिमित्तपरिणामाभावात् सोपि किमिति तयोर्नस्या-दितिचेन्। स्वाभाव्यात्। नारकाणामग्नि सम्बन्धाद्भस्मसाद्भाव-मुपगतानां पुनर्भस्मनि समुत्पद्यमानानां अपर्याप्ताद्धायां गुणद्वयस्य सत्त्वाविरोधान्नियमेन पर्याप्ता इति न घटते इति चेन्न, तेषां मरणा-भावात् भावे वा न ते तत्रोत्पद्यन्ते "णिरयादो णेरयिया उव्वट्टिद समाणा णो णिरयगदिं जादि णो देवगदिं जादि तिरिक्ख गदिं मणुस्सगदिं च जादि" इत्यनेनार्षेण निषिद्धत्वात्। आयुषोऽवसाने म्रियमाणानामेष नियमश्चेन्न तेषामपमृत्योरसत्त्वात्। भस्मसाद्भाव-

मुपगतदेहानां तेषां कथं पुनर्मरण मिति चेन्न देहविकारस्याऽऽ-युर्विच्छित्यनिमित्तत्वात्। अन्यथा बालावस्थातः प्राप्तयौवनस्यापि मरणप्रसङ्गात्।

(पृष्ठ १६०-१६१ धवल सिद्धांत)

अर्थ—जिन नारकियों की छह पर्याप्तियां पूर्ण हो जाती हैं वे ही नारकी इन दूसरे और तीसरे दो गुणस्थानों के साथ परिणमन करते हैं। अपर्याप्त अवस्था में नहीं। 'उपर्युक्त दो गुणस्थान नारकियों की अपर्याप्त अवस्था में क्यों नहीं होते ? इस शङ्का के उत्तर में आचार्य कहते हैं कि उनकी अपर्याप्त अवस्था में उक्त दो गुणस्थानों के निमित्त भूत परिणाम नहीं हो पाते हैं। फिर शङ्का होती है कि वैसे परिणाम अपर्याप्त अवस्था में उनके क्यों नहीं हो पाते हैं ?

उत्तर—वस्तु स्वभाव ही ऐसा है। फिर शङ्का होती है कि नारकी अग्नि के सम्बन्ध से भस्म हो जाते हैं और उसी भस्म में से उत्पन्न हो जाते हैं वैसी अवस्था में अपर्याप्त अवस्था में भी उनके उक्त दो गुणस्थान हो सकते हैं इसमें क्या विरोध है अर्थात् छेदन आदि से नष्ट एवं अग्नि में जलाने से उनका शरीर नष्ट हो जाता है फिर वे उन्हीं भस्म आदि अवयवों में उत्पन्न हो जाते हैं इसलिये उनकी अपर्याप्त अवस्था में उक्त दो गुणस्थान हो सकते हैं इसमें कोई बाधा प्रतीत नहीं होती फिर जो यह बात सूत्र में कही गई है कि दूसरे तीसरे गुणस्थान में नारकी नियम से

पर्याप्त ही होते हैं सो कैसे घटेगी ? पर्याप्त अवस्था का नियम कैसे बनेगा ?

उत्तर—यह शंका ठीक नहीं है क्योंकि छेदन भेदन होने एवं अग्नि आदि में जला देने आदि से भी नारकियों का मरण नहीं होता है। यदि उनका मरण हो जाय तो वे फिर वहां (नरक में) उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। कारण; ऐसा आगम है कि जिनकी आयु पूर्ण हो जाती है ऐसे नारकी नरक गति से निकल कर फिर नरक गति में पैदा नहीं होते हैं। उसी प्रकार वे मरकर देवगति को भी नहीं जाते हैं किन्तु नरक से निकलकर वे तिर्यंच और मनुष्यगति में ही उत्पन्न होते हैं इस आर्ष कथन से नारकी जीवों का नरक से निकलकर पुनः सीधा नरक में उत्पन्न होना निषिद्ध है।

फिर शंका—आयु के अन्त में ही मरने वाले नारकियों के लिये ही सूत्र में कहा गया नियम लागू होना चाहिये।

उत्तर—नहीं, क्योंकि नारकी जीवों की अपमृत्यु (अकाल-मरण) नहीं होती है। नारकियों का छेदन भेदन अग्निमें जलाने आदि से बीच में मरण नहीं होता है किन्तु आयु के समाप्त होने पर ही उनका मरण होता है।

फिर शंका—नारकियोंका शरीर अग्निमें सर्वथा जला दिया जाता है वैसी अवस्थामें उनका मरण फिर कैसे कहा आता है ?

उत्तर—वह मरण नहीं है किन्तु उनके शरीर का केवल

विकार मात्र है। वह आयु की व्युच्छित्ति (नाश) होने में निमित्त नहीं है। यदि बीच २ के शरीर विकार को ही मरण मान लिया जाय तो फिर जिसने बाल्यावस्था को पूरा करके यौवन अवस्था को प्राप्त कर लिया है उसका भी मरण कहा जाना चाहिए? अर्थात् मरण तो आयु की समाप्ति में ही होता है।

इस समस्त कथन से यह बात भली भांति सिद्ध हो जाती है कि दूसरे तीसरे गुणस्थान जो नारकियों की पर्याप्त अवस्था में ही सूत्रकार भगवत् भूतबलि पुष्पदन्त ने सूत्र ८० में बताये हैं वे नारकियों के द्रव्य शरीर की ही मुख्यता से बताये हैं। इस सूत्र के अन्तस्तत्व को धवलाकार ने सर्वथा स्पष्ट कर दिया है कि नारकियों का शरीर बीच २ में अग्नि से जला दिया भी जाता है तो भी वह मरण नहीं है और न वह उनकी अपर्याप्त अवस्था है। क्योंकि उस शरीर के जल जाने पर भी नारकियों की आयु समाप्त न होने से उनका मरण नहीं होता है। इसलिये वे पर्याप्त ही रहते हैं। इस प्रकार यह पर्याप्त अपर्याप्त अवस्था का समन्वय नारकियोंके द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है। और उसी पर्याप्त द्रव्य शरीर की मुख्यता से नारकियों के उक्त दो गुणस्थानों का सद्भाव सूत्रकार ने बताया है।

यदि यहां पर भाववेद की मुख्यता अथवा उसका विवेचन होता तो उस वेद की मुख्यता से ही सूत्रकार विवेचन करते, परन्तु उन्हों ने भावों की प्रधानता से यहां विवेचन सर्वथा नहीं

किया है किन्तु नारकियों के द्रव्य शरीर में और उनकी पर्याप्त अवस्था में सम्भव होने वाले गुणस्थानों का उल्लेख किया है। इसी प्रकरण में पर्याप्तियों के साथ गति मार्गणा में ६३ वां सूत्र है। अतः जैसे यहां पर नारकियों के द्रव्यशरीर (द्रव्यवेद) की मुख्यता से सम्भव गुणस्थानों का प्रतिपादन सूत्रकार ने किया है ठीक इसी प्रकार आगे के ८१ से लेकर ६२वें आदि सूत्र में भी किया है। वहां भी पर्याप्त अपर्याप्त अवस्था से सम्बन्धित द्रव्य-वेद की मुख्यता से सम्भव गुणस्थानों का वर्णन है।

विद्वानोंको क्रमपद्धति, प्रकरण और संबंध समन्वय का विचार करके ही ग्रन्थ का रहस्य समझना चाहिये। "समस्त षट्खण्डागम भाववेद का ही निरूपक है, द्रव्यवेद का इसमें कहीं भी वर्णन नहीं है वह ग्रन्थांतरों से समझना चाहिये" ऐसा एक ओर से सभी भावपक्षी विद्वान् अपने लम्बे २ लेखों में लिख रहे हैं सो वे क्या समझकर ऐसा लिखते हैं? हमें तो उनके वैसे लेख और ग्रन्थाशय के समझने पर आश्चर्य होता है। ऊपर जो कुछ भी विवेचन हमने सूत्रों और व्याख्या के आधार से किया है उसपर उन विद्वानों को दृष्टि देना चाहिये और ग्रन्थानुरूप ही समझने के लिये बुद्धि को उपयुक्त बनाना चाहिये। पक्ष मोह में पड़कर भगवान भूतबलि पुष्पदन्त ने इन धवलादि सिद्धांत शास्त्रों में किसी बात को छोड़ा नहीं है। उन्होंने द्रव्य शरीर की पात्रता के आधार पर ही सम्भव गुणस्थान का समन्वय किया है। इसलिये

यह कहना कि द्रव्यवेद का कथन इस षटखण्डागम में नहीं है उसे ग्रन्थांतर से समझना चाहिये सिद्धांत शास्त्र को अधूरा बताने के साथ वस्तु तत्व का अपलाप करना भी है। क्योंकि द्रव्यवेद का वर्णन ही सत्प्ररूपणा अनुयोग द्वार में किया गया है जिसका कि दिग्दर्शन हमने अनेक सूत्रों के प्रमाणों से यह कराया है। उस समस्त कथन का भाव-पक्षी विद्वानों के निरूपण से लोप ही हो जाता है अथवा विपरीत कथन सिद्ध होता है। मनसा वचसा कायेन परम वंदनीय इन सिद्धांत शास्त्रों के आशयानुसार ही उन्हें वस्तु तत्व का विचार करना चाहिये ऐसा प्रसंगापात्त उनसे हमारा निवेदन है।

आगे भी सिद्धांत शास्त्र सरणि के अनुसार पर्याप्तियों में गुणस्थानों के साथ चारों गतियों में द्रव्यवेद अथवा द्रव्य शरीर का ही सम्बन्ध है। यह बात आगे के १०० सूत्रों तक जहां तक कि पर्याप्तियों के साथ गति-भिन्न गुणस्थानों का विवेचन है बराबर इसी रूप में है। १००वें सूत्र के बाद वेद मार्गणा का प्रारम्भ १०१ सूत्र से होता है। उस वेद मार्गणा से लेकर आगे की कषायादि मार्गणाओं में द्रव्य शरीर की मुख्यता नहीं रहती है। अतः उन सबों में भाववेद का विवेचन है। उस भाववेद के प्रकरण में मानुषियों के नो और चौदह गुणस्थान का समावेश किया गया है, इस सिद्धांत सरणि को समझकर ही विद्वानों को प्रकृत विषय (संयत पद के विवाद) को सरल बुद्धि से हटा देने में

हो सिद्धांत शास्त्रों का वास्तविक विनय, वस्तु स्वरूप एवं समाज हित समझना चाहिये। अस्तु—

अब आगे के सूत्रों पर दृष्टि डालिये—

बिदियादि जाव सत्तमाए पुढवीये णेरइया मिच्छाइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता।

(सूत्र ८२ पृष्ठ १८२ धवला)

अर्थ—दूसरे नरक से लेकर सातवें नरक तक नारकी मिथ्यादृष्टि पहले गुणस्थान को अपर्याप्त अवस्था में भी धारण करते हैं। पर्याप्त में भी करते हैं।

इस सूत्र की व्याख्या में धवलाकार कहते हैं—

अवस्तनीषु षटसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टीनामुत्पत्तेः सत्वात्।

(पृष्ठ १८२ धवला)

अर्थात्—पहली पृथ्वी को छोड़कर बाकी नीचे की छहों पृथिवियों में मिथ्यादृष्टि जीव ही उत्पन्न होते हैं अतः वहां पर—दूसरे से सातवें नरक तक के नारकियों की पर्याप्त अपर्याप्त दोनों अवस्थाओं में पहला गुणस्थान होता है। यहां पर भी द्रव्य-वेद (नारक शरीर) के आधार पर ही गुणस्थान का ही निरूपण किया गया है।

आगे के सूत्र में और भी स्पष्ट किया गया है। देखिये—

सासण सम्माइट्ठि सम्मामिच्छाइट्ठि असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता। (सूत्र ८३ पृष्ठ १८२ धवल सिद्धांत)

अर्थ सुगम है—

इस सूत्र की उत्थानिका में धवलाकार कहते हैं—

शेषगुणस्थानानां तत्र सत्वं क्व च न भवेदिति जातारेकस्य भव्यस्यारेका निरसनार्थमाह। (पृष्ठ १६२)

अर्थ—उन पृथिवियों के किन २ नारकियों में (किन २ द्रव्य शरीरों में) शेष गुणस्थान पाये जाते हैं और किन२ नारक शरीरों में वे नहीं पाये जाते हैं इस शङ्का को दूर करने के लिये ही यह ८३ वां सूत्र कहा जाता है। इस उत्थानिका के शब्दों पर गवेषणा करने एवं भाव पर लक्ष्य देने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुणस्थानों का सम्भव, द्रव्य शरीर पर ही निर्भर है और उसका मूल बीज पर्याप्ति अपर्याप्ति हैं।

तिरिक्खा मिच्छाइट्ठिसासणसम्माइट्ठिअसंजदसम्माइट्ठिणो सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता।

(सूत्र ८४ पृष्ठ १६३ धवल)

अर्थ सुगम है—

परन्तु यहां पर तिर्यंचों के जो अपर्याप्त अवस्था में भी चौथा गुणस्थान सूत्र में बताया गया है वह तिर्यंचों के द्रव्य शरीर के आधार पर ही बताया गया है इस सूत्र का स्पष्टीकरण धवलाकार ने इस प्रकार किया है—

भवतु नाम मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टीनां तिर्यक्षु पर्याप्ता-पर्याप्तद्वयोः सत्वं तयोस्तत्रोत्पत्त्यविरोधात् सम्यग्दृष्टयस्तु पुनर्नो-

त्पद्यन्ते तिर्यगपर्याप्तपर्यायेण सम्यग्दर्शनस्य विरोधादिति ? न विरोधः; अस्यार्षस्याप्रामाण्यप्रसङ्गात्। क्षायिकसम्यग्दृष्टिः सेवित-तीर्थकरः क्षपितसप्तप्रकृतिः कथं तिर्यक्षु दुःखभूयस्सूत्पद्यते इति-चेन्न तिरश्चां नारकेभ्यो दुःखाधिक्याभावात्। नारकेष्वपि सम्यग्दृष्टयो नोत्पत्स्यन्ते इति चेन्न तेषां तत्रोत्पत्तिप्रतिपादकार्षोप-लम्भात्। पृष्ठ १६३ धवला)

अर्थ—मिथ्यादृष्टि और सासादन, इन दो गुणस्थानों की सत्ता भले ही तिर्यंचों की पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था में बनी रहे क्योंकि तिर्यंचों की पर्याप्त अपर्याप्त अवस्था में इन दो गुण-स्थानों के होने में कोई बाधा नहीं आती है। परन्तु सम्यग्दृष्टि जीव तो तिर्यंचों में उत्पन्न नहीं होते हैं क्योंकि तिर्यंचों की अपर्याप्त अवस्था के साथ सम्यग्दर्शन का विरोध है ? इस शङ्का के उत्तर में धवलाकार कहते हैं कि तिर्यंचों की अपर्याप्त अवस्था के साथ भी सम्यग्दर्शन का विरोध नहीं है, यदि विरोध होता तो ऊपर जो ८४वां सूत्र है इस आर्ष को अप्रमाणता ठहरेगी, क्योंकि तिर्यंचों की अपर्याप्त अवस्था में भी इस सूत्र में चौथा गुणस्थान बताया गया है।

शङ्का—जिसने तीर्थंकर की सेवा की है और जिसने सात प्रकृतियों का क्षय किया है (प्रतिष्ठापन) ऐसा क्षायिक सम्यग्दृष्टि-जीव अधिक दुःख भोगने वाले तिर्यंचों में कैसे उत्पन्न हो सकता है ?

उत्तर— ऐसा नहीं है, क्योंकि तिर्यंचों में नारकियों से अधिक दुःख नहीं है।

फिर शंका—जब नारकियों में अधिक दुःख है तो उन नारकियों में भी सम्यग्दृष्टि जीव नहीं हो सकेंगे?

उत्तर—यह भी शंका ठीक नहीं है क्योंकि नारकियों में भी सम्यग्दर्शन होता है। ऐसा प्रतिपादन करनेवाला आर्ष सूत्र प्रमाण में पाया जाता है आदि।

इस उपर्युक्त सूत्र की व्याख्या से श्री धवलाकार ने यह बहुत खुलासा कर दिया है कि तिर्यंचों के अपर्याप्त शरीर में सम्यक्दर्शन क्यों हो सकता है? उसका समाधान भी आगे की व्याख्या द्वारा यह कर दिया है कि जिस जीव ने सम्यग्दर्शन के ग्रहण करने के पहले मिथ्यादृष्टि अवस्था में तिर्यंच आयु और नरक आयु का बन्ध कर लिया है उस जीव की तिर्यंच शरीर में भी उत्पत्ति होने में कोई बाधा नहीं है लेख बढ़ जाने के भय से हम बहुत सा वर्णन छोड़ते जाते हैं। इसी लिये आगे की व्याख्या हमने नहीं लिखी है। जो चाहें वे उक्त पृष्ठ पर धवला से देख सकते हैं।

हम इस सब निरूपण से यह बताना चाहते हैं कि गुणस्थानों की सम्भावना एवं सत्ता जीवों के द्रव्य शरीर से ही सम्बन्धित है। और द्रव्य शरीर वही लिया जायगा जिसका कि सूत्र में उल्लेख है। तिर्यंच शरीर में अपर्याप्त अवस्था में

सम्यग्दर्शन के साथ जीव किस प्रकार उत्पन्न होता है ? इस बात का इतना लम्बा विचार और हेतुवाद केवल तिर्यंच के द्रव्यशरीर की पात्रता पर ही किया गया है। यहां पर चौथे गुणस्थान के सम्भावित शरीर के कथन की मुख्यता बताई गई है, इस बात की सिद्धि सूत्र में पड़े हुये अपर्याप्त पद से की गई है। अतः इस समस्त प्रकरण में पर्याप्त अपर्याप्त पद भाववेद का विधान नहीं करते हैं किन्तु द्रव्य शरीर का ही करते हैं यह निर्विवाद निर्णय सूत्रकार का है। भाव—पक्षियों को निष्पक्षदृष्टि से सूत्राशय की व्याख्या के आधार पर समझ लेना चाहिये।

और भी खुलासा देखिये—

सम्मामिच्छाइट्ठि संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता।

(सूत्र ८५ पृष्ठ १६३ धवल सिद्धांत)

अर्थ सुगम है।

इस सूत्र की व्याख्या करते हुये धवलाकार ने यह बात सप्रमाण स्पष्ट कर दी है कि सूत्र में जो तिर्यंचों के पांचवां गुण-स्थान बताया गया है वह पर्याप्त अवस्था में ही क्यों बताया गया है, अपर्याप्त अवस्था में क्यों नहीं बताया गया ? व्याख्या इस प्रकार है—

मनुष्याः मिथ्यादृष्ट्यवस्थायां बद्धतिर्यगायुषः पश्चात् सम्यग्द-र्शनेन सहाप्रत्याख्यानाः क्षपितसप्तप्रकृतयस्तिर्यक्षु किन्नोत्प-द्यन्ते? इति चेत् किंचातोऽप्रत्याख्यानगुणस्य तिर्यगपर्याप्तेषु सत्वा-

पत्तिः ? न, देवगतिव्यतिरिक्तगतित्रयसम्बद्धायुषोपलक्षितानामणुव्रतोपादानबुद्ध्यनुत्पत्तेः उक्तञ्च—

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधे वि होइ सम्मत्तं ।
अणुवद महव्वदाइं ण लहइ देवाउगं मोत्तुं ॥
(गोम्मटसार कर्मकांड गाथा नं० १६१)
(धवला पृष्ठ १६३)

अर्थ—जिन मनुष्यों ने मिथ्यादृष्टि अवस्था में तिर्यंच आयु का बन्ध कर लिया है पीछे सम्यग्दर्शन के साथ देश संयम को भी प्राप्त कर लिया है ऐसे मनुष्य यदि सात प्रकृतियों का क्षय करके मरण करें तो वे तिर्यंचों में क्यों उत्पन्न नहीं होंगे वैसी अवस्था में उन तिर्यंचों के अपर्याप्त अवस्था में देश संयम अर्थात् पांचवां गुणस्थान भी पाया जायगा ? इस शंका के उत्तर में धवलाकार कहते हैं— कि नहीं पाया जाता क्योंकि देवगति को छोड़कर शेष तीन गति सम्बन्धी आयु बन्ध युक्त जीवों के अणुव्रतों के ग्रहण करने की बुद्धि ही उत्पन्न नहीं होती है इसके प्रमाण में धवलाकार ने गोम्मटसार कर्मकांड की गाथा का प्रमाण भी दिया है कि चारों गतियों की आयु के बंध आने पर भी सम्यग्दर्शन तो हो सकता है परन्तु देवायु के बन्ध को छोड़कर शेष तीनों गति सम्बन्धी आयुबन्ध होने पर यह जीव अणुव्रत और महाव्रत को ग्रहण नहीं कर सकता है ।

इस कथन से दो बातों का खुलासा हो जाता है एक तो यह

कि पर्याप्त अपर्याप्त पर्शों का सम्बन्ध केवल द्रव्यशरीर से ही है। और उन्ही पर्याप्त अपर्याप्त द्रव्य शरीर (द्रव्यवेद) के साथ गुणस्थानों को घटित किया गया है। यहां तक बताया गया है कि जिस जीव के देवायु का बन्ध नहीं हुवा है या उस पर्याय में नहीं होगा अथवा शेष तीन आयुओं में से किसी भी आयु का बन्ध हो चुका है तो उस जीव को उस पर्याय में अणुव्रत और महाव्रत नहीं हो सकते हैं। यह बात द्रव्य शरीर की पात्रता से कितना गहरा अविनाभावी सम्बन्ध रखती है यह बात पाठक विद्वान अच्छी तरह समझ लेवें।

दूसरी बात धवलाकार की व्याख्या से और गोम्मटसार कर्मकांड की गाथा का उन्हीं के द्वारा प्रमाण देने से यह भी अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि इस पर्याप्ति अपर्याप्ति प्रकरण में जैसा इस षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र का द्रव्यवेद की मुख्यता का कथन है वैसा ही गोम्मटसार का भी कथन द्रव्यवेद की मुख्यता का है। धवलाकार ने गोम्मटसार का प्रमाण देकर दोनों शास्त्रों का एक रूप में ही प्रतिपादन स्पष्ट कर दिया है। भावपक्षी विद्वान अपने लेखों में षटखण्डागम के ९३वें सूत्र का विचार करने के लिये षटखण्डागम के प्रमाणों को छोड़ चुके हैं वे लोग प्रायः बहुभाग प्रमाण गोम्मटसार के ही दे रहे हैं और यह बता रहे हैं कि गोम्मटसार जैसे भाववेद का निरूपण करता है। वैसे षटखण्डागम भी भाववेद का ही निरूपण करता है। परन्तु

ऐसा उनका कहना ग्रन्थाशय के विरुद्ध है। इस बात को हम षट्खण्डागम से तो यहां बता ही रहे हैं, आगे गोम्मटसार के प्रमाणों से भी बतावेंगे कि वह भी द्रव्यवेद का निरूपण करता है। और षट्खण्डागम तथा गोम्मटसार दोनों का कथन एक रूप में है। जैसा कि ऊपर के प्रमाण से धवलाकार ने स्पष्ट कर दिया है।

अब यहां पर तिर्यंच योनिमती (तिर्यंच स्त्रियों) का सूत्र लिखते हैं—

पंचिंदिय तिरिक्ख जोणिणीसु मिच्छाइट्ठि सासणसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ।

(सूत्र ८७ पृष्ठ १६४ धवल)

अर्थ सुगम है। इस सूत्र का स्पष्टीकरण करते हुये धवलाकार लिखते हैं कि—

सासादनो नारकेष्विव तिर्यक्ष्वपि नोत्पद्यतेति चेन्न द्वयोः साधर्म्याभावतो दृष्टांतानुपपत्तेः।

(पृष्ठ १६४ धवला)

अर्थ—सासादन गुणस्थान वाला जीव मरकर जिस प्रकार नारकियों में उत्पन्न नहीं होता है, उसी प्रकार तिर्यंचों में भी उत्पन्न नहीं होना चाहिये ?

उत्तर—यह शङ्का ठीक नहीं है, कारण; नारकी और तिर्यंचों में साधर्म्य नहीं पाया जाता है इसलिये नारकियों का दृष्टांत

तिर्यंचों में लागू नहीं होता है।

इस व्याख्या से धवलाकार ने यह स्पष्ट किया है कि सासादन गुणस्थान नारकियों के अपर्याप्त द्रव्य शरीर में नहीं हो सकता है किन्तु तिर्यंचों के द्रव्य शरीर में अपर्याप्त अवस्था में भी हो सकता है। अपर्याप्त अवस्था का स्वरूप सर्वत्र जीव के मरने जीने से ही बन सकता है। अतः जहां भी अपर्याप्त और पर्याप्त विशेषण होंगे वहां सर्वत्र द्रव्य शरीर का ही ग्रहण होगा। यह निश्चित है और प्रकृत में तो खुलासा सूत्र और व्याख्या से स्पष्ट किया ही जा रहा है।

सम्मामिच्छाइट्ठि असंजदसम्माइट्ठि संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ। (सूत्र ८८ पृष्ठ १६४ धवला)

अर्थ—योनिमती तिर्यंच सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंयत सम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानों में नियम से पर्याप्त ही होते हैं। इसी का खुलासा धवलाकार करते हैं—

कुतः तत्रैतासामुत्पत्तेरभावात्। (पृष्ठ १६४ धवला)

अर्थ—उपर्युक्त तीन गुणस्थान तिर्यंच योनिमती (द्रव्यस्त्री) के पर्याप्त अवस्था में ही क्यों होते हैं? अर्थात् अपर्याप्त अवस्था में क्यों नहीं होते? इसका उत्तर आचार्य देते हैं कि—उपर्युक्त गुणस्थानों वाला जीव मरकर योनिमती तिर्यंचों में उत्पन्न नहीं होता है। इस कथन से यह बात सिद्ध हो जाती है कि यहां पर पर्याप्ति अपर्याप्ति प्रकरण में गुणस्थानों का

सद्भाव द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है। यहां पर भाववेद की कोई मुख्यता नहीं है। पर्याप्ति अपर्याप्ति तो शरीर रचना की पूर्णता अपूर्णता है वह भाववेद में घटित हो ही नहीं सकती है यही वर्णन हमने अनेक सूत्रों एवं उनकी धवल टीका से स्पष्ट किया है।

मनुष्यगति और ९३वें सूत्र पर विचार

जिस प्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्ति के सम्बन्ध से नरकगति तिर्यंचगति का वर्णन किया गया है उसी प्रकार यहां पर सूत्र क्रमबद्ध एवं प्रकरणगत मनुष्यगति का वर्णन भी पर्याप्ति अपर्याप्ति से सम्बन्धित गुणस्थानों के सद्भाव से किया जाता है—

मणुस्सा मिच्छाइट्ठि सासणसम्माइट्ठि असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सिया पज्जत्ता सिया अपज्जत्ता।

(सूत्र ८९ पृष्ठ १६५ धवल)

सम्मामिच्छाइट्ठि-संजदासंजद-संजदट्ठाणे णियमा पज्जत्ता।

(सूत्र ९० पृष्ठ १६५ धवल)

ये दोनों सूत्र मनुष्यों के पर्याप्त अपर्याप्त संबंधी गुणस्थानों का कथन करते हैं। इनमें पहले सूत्र द्वारा यह बताया गया है कि मिथ्यादृष्टि सासादन और असंयत सम्यग्दृष्टि इन तीनों गुणस्थानों में मनुष्य अपर्याप्त भी हो सकते हैं और पर्याप्त भी हो सकते हैं। दूसरे सूत्र में यह बताया गया है कि सम्यक्मिथ्यादृष्टि, संयता-

संयत और संयत गुणस्थानों में मनुष्य नियम से पर्याप्त ही होते हैं।

इस द्वितीय सूत्र की व्याख्या धवलाकार ने इस प्रकार की है-

भवतु सर्वेषामेतेषां पर्याप्तत्वं आहारशरीरमुत्थापयतां प्रमत्तानामनिष्पन्नाहारगतषट्पर्याप्तीनाम्। न पर्याप्तकर्मोदयापेक्षया पर्याप्तोपदेशः तदुदयसत्त्वाविशेषतोऽसंयतसम्यग्दृष्टीनामपि अपर्याप्तत्वस्याभावापत्तेः। न च सयमोत्पत्त्यवस्थापेक्षया तदवस्थायां प्रमत्तस्य पर्याप्तस्य पर्याप्तत्वं घटते असंयतसम्यग्दृष्टावपि तत्प्रसंगादिति नैष दोषः। (पृष्ठ १६५)

अर्थ—यदि सूत्र में बताये गये सभी गुणस्थान वालों को पर्याप्तपना प्राप्त होता है तो होओ। परन्तु जिनकी आहारक शरीर सम्बन्धी छह पर्याप्तियां पूर्ण नहीं हुई हैं ऐसे आहारक शरीर को उत्पन्न करनेवाले प्रमत्त गुणस्थानवर्ती जीवों के पर्याप्तपना नहीं बन सकता है। यदि पर्याप्त नामकर्म के उदय की अपेक्षा आहारक शरीर को उत्पन्न करने वाले प्रमत्त संयतों को पर्याप्तक कहा जावे सो भी कहना ठीक नहीं है। क्योंकि पर्याप्त कर्म का उदय प्रमत्त संयतों के समान असंयत सम्यग्दृष्टियों के भी निर्वृत्यपर्याप्त अवस्था में पाया जाता है इसलिये वहां पर भी अपर्याप्तपने का अभाव मानना पड़ेगा। संयम की उत्पत्ति रूप अवस्था की अपेक्षा प्रमत्त संयत के आहारक की अपर्याप्त अवस्था में पर्याप्तपना बन जाता है यदि ऐसा कहा जाय सो भी

ठीक नहीं है क्योंकि इस प्रकार असयत सम्यग्दृष्टियों के भी अपर्याप्त अवस्था में (सम्यग्दर्शन की अपेक्षा) पर्याप्तपने का सङ्ग आ जायगा ?

उत्तर—यह कोई दोष नहीं है क्योंकि द्रव्यार्थिक नय के अवलम्बन की अपेक्षा प्रमत्त संयतों को आहारक शरीर सम्बन्धी छह पर्याप्तियों के पूर्ण नहीं होने पर भी पर्याप्त कहा है।

भावपक्षी विद्वान ध्यान से ऊपर की पंक्तियों को पढ़कर विचार करें।

यहां पर जो व्याख्या धवलाकार ने की है वह इतनी स्पष्ट है कि भाववेद पक्षवालों का शङ्का एवं सन्देह के लिये कोई स्थान ही नहीं रहता है। बहुत सुन्दर हेतुपूर्ण विवेचन है छठे गुणस्थान में मुनि पर्याप्त हैं क्योंकि उनके औदारिक शरीर पूर्ण हो चुका है इसलिये वहां पर पर्याप्त अवस्था में संयम का सद्भाव बताया गया है। परन्तु छठे गुणस्थान में उसी आहार वर्गणा से बनने वाला आहारक शरीर जबतक पूर्ण नहीं है तब तक मुनि को पर्याप्त कैसे कहा जायगा और वहां संयम कैसे होगा ? इसके उत्तर में पर्याप्त नामकर्म का उदय एवं द्रव्यार्थिक नय का अवलम्बन आदि कहकर जो समाधान किया गया है उससे भलीभांति सिद्ध होता है कि संयत गुणस्थान षटपर्याप्तियों की पूर्णता करने वाले मनुष्य के द्रव्य शरीर के आधार से ही कहा गया है। इसी लिये हमने इतनी व्याख्या लिखकर इस प्रकरण का दिग्दर्शन

कराया है। इतना खुलासा विवेचन होने पर भी जो षटखण्डागम के समस्त प्रकरण और समस्त कथन को भाववेद की अपेक्षा से ही बताते हैं और द्रव्यवेद (द्रव्यशरीर) की मुख्यता का निषेध करते हैं. इन्होंने इस प्रकरण को एवं पर्याप्ति अपर्याप्ति सम्बन्धी गुणस्थान विवेचन को पढ़ा और समझा भी है या नहीं? सूत्रों के अभिप्राय से प्रत्यक्ष विरुद्ध उनके कथन पर आश्चर्य होता है।

एवं मणुस्स पज्जत्ता। (सूत्र ९१ पृ० १६६ धवल)

अर्थ—जैसा सामान्य मनुष्य के लिये विधान किया गया है वैसा ही पर्याप्त मनुष्य के लिये समझना चाहिये। इस सूत्र की व्याख्या में कहा गया है कि—

कथं तस्य पर्याप्तत्वं? न द्रव्यार्थिकनयाश्रयणात् ओदनः पच्यत इत्यत्र यथा तन्दुलानामेवोदनव्यपदेशस्तथाऽपर्याप्तावस्थायामप्यत्र पर्याप्तव्यवहारो न विरुध्यते इति। पर्याप्तनामकर्मोदयापेक्षया वा पर्याप्तता।

अर्थ—जिसकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं हुई है उसे पर्याप्तक कैसे कहा जायगा?

उत्तर—यह शङ्का ठीक नहीं है क्योंकि द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा उसके भी पर्याप्तपना बन जाता है जिस प्रकार भात पक रहा है ऐसा कहने से चावलों को भात कहा जाता है उसी प्रकार जिसके सभी पर्याप्तियां पूर्ण होने वाली हैं ऐसे जीव के अपर्याप्त अवस्था में भी (निर्वृत्यपर्याप्तक अवस्था में भी) पर्याप्तपने का

व्यवहार होता है। अथवा पर्याप्त नामकर्म के उदय की अपेक्षा से उन जीवों के पर्याप्तपना समझ लेना चाहिये।

यहां पर पर्याप्त नामकर्म के उदय से जिसके छहों पर्याप्तियां पूर्ण हो चुकी हैं उसी मनुष्य को पर्याप्त मनुष्य कहा गया है, इससे यह बात सुगमता से हर एक की समझ में आ जाती है कि पर्याप्त मनुष्यों में गुणस्थानों का कथन द्रव्य शरीर की मुख्यता से ही किया गया है। जिस प्रकार पर्याप्त और अपर्याप्त के सम्बन्धसे यह कथन है उसी प्रकार आगे के सूत्रों में भी समझना चाहिये।

मानुषी (द्रव्यस्त्री) के गुणस्थान

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि सासणसम्माइट्ठिाणे सिया पज्ज-त्तियाओ सिया अपज्जत्तियाओ।

(सूत्र ९२ पृ० १६६ धवलसि)

अर्थ—मानुषियां (द्रव्यस्त्रियां) में मिथ्यादृष्टि और सासादन ये दो गुणस्थान पर्याप्त अवस्था में भी होते हैं और अपर्याप्त अवस्था में भी होते हैं।

इस ९२ वें और इसके आगे के ९३ वें सूत्र को कुछ विद्वानों ने विवादस्थ बना लिया है वे इन दोनों सूत्रों में बताये गये मानुषियों के गुणस्थानों को द्रव्यस्त्री के न बता कर भावस्त्री के बताते हैं। परन्तु उनका कहना पर्याप्ति अपर्याप्ति के सम्बन्धमें कहे गये समस्त पूर्व सूत्रों के कथन से और इस सूत्र के कथन से

भी सर्वथा विरुद्ध है। इसी बात का खुलासा यहां पर इस सूत्र की धवला टीका से करते हैं:—

अत्रापि पूर्ववदपर्याप्तानां पर्याप्तव्यवहारः प्रवर्तयितव्यः। अथवा स्यादित्ययं निपातः कथञ्चिदित्येतस्मिन्नर्थे वर्तते। तेन स्यात्पर्याप्ताः पर्याप्तनामकर्मोदयाच्छरीरनिष्पत्त्यपेक्षया वा। स्यादपर्याप्ताः शरीरानिष्पत्त्यपेक्षया इति वक्तव्यम्। सुगममन्यत्।

अर्थ—यहां पर भी पहले के समान निर्वृत्त्यपर्याप्तकों में पर्याप्तपने का व्यवहार कर लेना चाहिये। अथवा 'स्यात्' यह निपात कथञ्चित् अर्थ में आता है। इस स्यात् (सिया) पद के अनुसार वे कथंचित् पर्याप्त होती हैं। क्योंकि पर्याप्त नाम कर्म के उदय की अपेक्षा से अथवा शरीर पर्याप्ति की पूर्णता की अपेक्षा से वे द्रव्यस्त्रियां पर्याप्त कही जाती हैं। तथा वे कथंचित अपर्याप्त भी होती हैं। शरीर पर्याप्ति की अपूर्णता की अपेक्षा से वे अपर्याप्त कहलाती हैं।

यहां पर धवलाकार ने "अत्रापि पूर्ववत्" ये दो पद देकर यह बताया है कि जिसप्रकार पहलेके सूत्रों में पर्याप्ति अपर्याप्ति के सम्बन्ध से मनुष्यों की षटपर्याप्तियों की पूर्णता और अपूर्णता का और उन अवस्थाओं में प्राप्त होने वाले गुणस्थानों का वर्णन किया है ठीक वैसा ही वर्णन यहां परभी किया जाता है इससे यह सिद्ध होता है कि इस ९२ वें सूत्र में भी उसी प्रकार द्रव्य शरीर का कथन है जैसा कि पहले के सूत्रों में मनुष्य तिर्यञ्च आदि का।

कहा गया है।

यहां पर द्रव्य शरीर किस का लिया जाय? यह शंका खड़ी होती है क्योंकि भावपक्षी विद्वान् कहते हैं कि यहां पर द्रव्य शरीर तो मनुष्य (पुरुष) का है और भावस्त्री ली जाती है।

इस के उत्तर में इतना समाधान पर्याप्त है कि जिसका इस सूत्र में विधान है उसी का द्रव्य शरीर लिया जाता है। इस सूत्र में मनुष्य का वर्णन तो नहीं है। उसका वर्णन तो सूत्र ८६, ९०, ९१ इन तीन सूत्रों में कहा जा चुका है यहां पर इस सूत्र में मानुषी का ही वर्णन है इस लिये उसी का द्रव्य शरीर लिया जायगा। और भाव का यह प्रकरण ही नहीं है क्योंकि पर्याप्ति अपर्याप्ति के सम्बन्ध से द्रव्य शरीर की निर्वृत्ति अनिर्वृत्ति की मुख्यता से ही समस्त कथन इस प्रकार से कहा गया है। अतः जो विद्वान इस सूत्र को भावस्त्री का विधायक बताते हैं और द्रव्यस्त्री का विधायक इस सूत्र को नहीं मानते हैं वे इस प्रकरण पर पर्याप्ति अपर्याप्ति के स्वरूप पर, सम्बन्ध समन्वय पर, और धवलाकार के स्फुट विवेचन पर मनन करें। पूर्व से क्रमबद्ध निरूपण किस प्रकार किया गया है, इस बात पर पूरा ध्यान देवें

पहले के सभी सूत्रों में द्रव्य शरीर की यथानुरूप पात्रता के आधार पर ही संभावित गुणस्थान बताये गये हैं। इस सूत्रकी धवला टीका से भी यही बात सिद्ध होती है कि यह सूत्र द्रव्यस्त्री का ही विधान करता है। यदि द्रव्यस्त्री का विधायक यह सूत्र

नहीं माना जावे और भावस्त्री का विधायक माना जावे तो फिर पर्याप्त नाम कर्म के उदय की अपेक्षा और शरीर निष्पत्ति की अपेक्षा से पर्याप्तता का उल्लेख धवलाकार ने जो स्पष्ट किया है वह कैसे घटित होगा ? क्योंकि भावस्त्री की विवक्षा तो भाववेद के उदयकी अपेक्षा से अर्थात् नोकषाय स्त्रीवेदके उदय की अपेक्षा से हो सकती है। परन्तु यहां तो पर्याप्त नाम कर्म का उदय और शरीर पर्याप्ति की अपेक्षा ली गई है। अत: निर्विवाद रूप से यह बात सिद्ध हो जाती है कि यह सूत्र द्रव्यस्त्रीका ही विधायक है

हठात् विवाद में डाला गया

९३वां सूत्र और उसकी धवला टीका का

स्पष्टीकरण

सम्मामिच्छाइट्ठि-असंजदसम्माइट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे णियमा पज्जत्तियाओ।

(सूत्र ९३ पृष्ठ १६६ धवलसिद्धांत)

अर्थ—सम्यग्मिथ्यादृष्टि, असंयत सम्यग्दृष्टि, संयतासंयत इन तीन गुणस्थानों में मानुषी (द्रव्यस्त्री) नियम से पर्याप्त ही होती है।

अर्थात् तीसरा, चौथा, और पांचवां गुणस्थान द्रव्यस्त्री को पर्याप्त अवस्था में ही हो सकते हैं। पहले ९२ वें सूत्र में द्रव्यस्त्री

की पर्याप्त अवस्था में और अपर्याप्त अवस्था में पहला और दूसरा यह दो गुणस्थान बताये गये हैं। उसी सूत्र से इस सूत्र में मानुषी की अनुवृत्ति आती है। ९२ वें सूत्र में द्रव्यस्त्री को अपर्याप्त अवस्था के गुणस्थानों का वर्णन है और इस ९३ वें सूत्र में उसी द्रव्यस्त्री की पर्याप्त अवस्था में होने वाले गुणस्थानों का वर्णन है। इस ९३ वें सूत्र में पड़े हुये 'नियमा पज्जत्तियाओ' नियम और पर्याप्त अवस्था इन दो शब्दों पर पूरा मनन और ध्यान करना चाहिये क्योंकि ये दो पद ही इस सूत्र में ऐसे हैं जिनसे द्रव्यस्त्री का ग्रहण हो सकता है।

पर्याप्ति शब्द षट पर्याप्ति और शरीर रचना की पूर्णता का विधान करता है। इससे द्रव्य शरीर की सिद्धि होती है। नियम शब्द द्रव्यस्त्री की अपर्याप्त अवस्था में उक्त गुणस्थानों की प्राप्ति की बाधकता को सूचित करता है। मानुषी शब्द की अनुवृत्ति ऊपर के ९२ वें सूत्र से आती है, उससे यह सिद्ध होता है कि वह द्रव्य शरीर जो पर्याप्त शब्द से अनिवार्य सिद्ध होता है द्रव्यस्त्री का लिया गया है। "९२ और ९३ सूत्रों में जो पर्याप्ति तथा अपर्याप्ति पदों से द्रव्य शरीर लिया गया है वह द्रव्य मनुष्य का मान लिया जाय तो क्या बाधा है?" इस शंका का समाधान हम ९२ वें सूत्र के विवेचन में कर चुके हैं यहां पर और भी स्पष्ट कर देते हैं कि मनुष्य (पुरुष) द्रव्य शरीर का निरूपण सूत्र ८९ ९०, ९१ इन तीन सूत्रों में किया जा चुका है। वहां उन सूत्रोंमें

भी पर्याप्ति अपर्याप्ति पद पड़े हुए हैं। उन पदों से उन मनुष्यों के द्रव्य शरीरकी पूर्णता अपूर्णता का ग्रहण और उन अवस्थाओं में सम्भावित गुणस्थानोंका विधान बताया जा चुका है।

यहां ६२ और ६३ वें सूत्रों में मानुषी के साथ पर्याप्ति अपर्याप्ति पद जुड़े हुए हैं इस लिये इन सूत्रों द्वारा पर्याप्त नाम कर्म के उदय तथा षट् पर्याप्तियों एवं शरीररचनाकी पूर्णता अपूर्णता का सम्बन्ध और समन्वय मानुषी के साथ ही होगा, मनुष्य के साथ नहीं हो सकता है।

मानुषी का वाच्यार्थ

"मानुषी शब्द भावकी में भी आता है और द्रव्यकी में भी आता है।" मानुषी शब्द के दोनों ही वाच्यार्थ होते हैं। इस बात को सभी भाव पक्षी विद्वान् स्वीकार करते हैं। परन्तु इन ६२ और ६३ वें सूत्रों में मानुषी शब्द का वाच्य-अर्थ केवल द्रव्यकी ही लिया गया है, क्योंकि मानुषी पद के साथ पर्याप्ति अपर्याप्ति पद भी जुड़े हुए हैं, वे द्रव्य शरीर की रचना और उसकी पूर्णता अपूर्णताके ही विधायक हैं क्योंकि यह योगमार्गणा का प्रकरण है अतः द्रव्य शरीर को छोड़ कर भावकी का ग्रहण नहीं होता है, और द्रव्य मनुष्य का विधान सूत्र ८९, ९०, ९१ इन तीन सूत्रों द्वारा किया जा चुका है अतः इन ६२-६३ वें सूत्रों में मनुष्य द्रव्य शरीर के साथ भावकी का ग्रहण कदापि सिद्ध नहीं हो सकता है। इस लिये सब प्रकार से उक्त सूत्रों के पदों पर

दृष्टि देने से यह बात भले प्रकार निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि ९२वें और ९३वें सूत्र द्रव्य स्त्री के ही विधायक हैं। द्रव्य मनुष्य के साथ भाव स्त्री की कल्पना इन सूत्रोंमें नहीं की जा सकती है।

जब ९३वां सूत्र द्रव्यस्त्री का ही विधान करता है तब उसमें 'संजद' पद का निवेश करना सिद्धांतसे विपरीत है। अतः यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो चुका है कि ९३वें सूत्र में 'संजद' पद का सर्वथा अभाव है। वहां संयत पद किसी प्रकार जोड़ा नहीं जा सकता है। यह बात सूत्रगत पदों से ही सिद्ध हो जाती है। तथा उसी के अनुरूप धवला टीका से भी वही बात सिद्ध होती है। उसका दिग्दर्शन धवला के प्रमाणों द्वारा हम यहीं कराते हैं—

"हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्त इतिचेत्, नोत्पद्यन्ते। कुतोवसीयते? अस्मादेव आर्षात्। अस्मादेवार्षात् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्ध्येदिति चेन्न सवाससत्वादप्रत्याख्यान-गुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः भावसंयमस्तासां सवाससामप्यविरुद्ध इतिचेत्, न तासां भावसंयमोस्ति भावाऽसंयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथानुपपत्तेः। कथं पुनस्तासु चतुर्दशगुणस्थानानीति चेन्न भावस्त्रीविशिष्ट-मनुष्यगतौ तत्सत्वाविरोधात्। भाववेदो बादर-कषायान्नोपर्यस्तीति न तत्र चतुर्दश गुणस्थानानां संभव इतिचेन्न अत्र वेदस्य प्राधान्याभावात्। गतिस्तु प्रधाना न सा आराद्विनश्यति वेदविशेषणायां गतौ न तानि संभवन्तीति चेन्न विनष्टेपि विशेषणे उपचारेण तद्व्यपदेशमादधानमनुष्यगतौ तत्सत्वाविरोधात्

मनुष्याअयर्प्तेष्वपर्याप्तप्रतिपत्ताभावतः सुगमत्वान्न तत्र वक्तव्य मस्ति"। पृष्ठ १६६-१६७ धवला)

ऊपर ९३वें सूत्र की समस्त धवला का उद्धरण दिया गया है यहां पर हम नीचे प्रत्येक पंक्ति का शब्दशः अर्थ लिखते हैं और उस अर्थ के नीचे (विशेष) शब्द द्वारा उसका खुलासा अपनी ओर से करते हैं—

हुण्डावसर्पिण्यां स्त्रीषु सम्यग्दृष्टयः किन्नोत्पद्यन्ते इतिचेत्—नोत्पद्यन्ते।

अर्थ—हुण्डावसर्पिणी में स्त्रियों में सम्यग्दृष्टि जीव क्यों नहीं उत्पन्न होते हैं? इस शंका के उत्तर में आचार्य कहते हैं कि—नहीं उत्पन्न होते हैं।

विशेष—यहां पर कोई दिगम्बर मतानुयायी शङ्का करता है कि जिस प्रकार हुण्डावसर्पिणी काल में तीर्थङ्कर आदिनाथ भगवान के पुत्रियां पैदा हुई हैं, षटखण्डविजयी भरत चक्रवर्ती की भी पराजय (हार) हुई है, उसी प्रकार इस हुण्डावसर्पिणी काल में द्रव्यस्त्रियोंमें भी सम्यग्दृष्टि जीव पैदा हो सकते हैं इसमें क्या बाधा है? उत्तर में आचार्य कहते हैं कि यह शङ्का ठीक नहीं है क्योंकि इस हुण्डावसर्पिणी काल में भी द्रव्यस्त्रियों में सम्यग-दृष्टि जीव पैदा नहीं हो सकते हैं। यहां पर इतना समझ लेना चाहिये कि धवलाकार ने मानुषी के स्थान में 'स्त्रीषु' पद दिया है उससे द्रव्यस्त्री का ही ग्रहण होता है। दूसरे—सम्यक्त्व सहित

जीव मरकर द्रव्य स्त्री में नहीं जाता है इसलिये ऊपर की शङ्का और समाधान से भी द्रव्यस्त्री का ही ग्रहण होता है।

कुतोऽवसीयते ? अस्मादेवाऽऽर्षात्।

अर्थ—शङ्का—यह बात कहां से जानी जाती है ?

उत्तर—इसी आर्ष से जानी जाती है।

विशेष—इस ९३वें सूत्र में 'णियमा पज्जत्तियाओ' यह स्पष्ट वाक्य है, इसी वाक्य से यह सिद्ध होता है कि सम्यक्-दर्शन की प्राप्ति द्रव्यस्त्री की पर्याप्त अवस्था में ही नियम से होती है। यदि सम्यग्दर्शन को साथ लेकर जीव द्रव्यस्त्री में पैदा हो जाताहो तो फिर इस सूत्रमें जो 'चौथा गुणस्थान नियमसे पर्याप्त अवस्था में ही होता है' ऐसा आचार्य नहीं कहते, इसलिये इस सूत्र रूप आर्ष से ही सिद्ध होता है कि सम्यग्दृष्टि मरकर द्रव्य स्त्री में पैदा नहीं होता है।

अस्मादेव आर्षात् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्ध्येत् इतिचेन्न सवासस्त्वात्, अप्रत्याख्यानगुणस्थितानां संयमानुपपत्तेः।

अर्थ—शङ्का—इसी आर्ष से द्रव्यस्त्रियों के मोक्ष भी सिद्ध होगी ?

उत्तर—यह शङ्का भी नहीं हो सकती, क्योंकि वस्त्र सहित होनेसे असंयम (देशसंयम) गुणस्थान में ठहरी हुई उन स्त्रियों के संयम पैदा नहीं होता है।

विशेष—शङ्काकार का यह कहना है कि सम्यग्दर्शन मोक्ष का

कारण है और द्रव्यस्त्रियों के इस सूत्र में सम्यग्दर्शन के साथ देश संयम भी बताया गया है। जब उस द्रव्यस्त्री को पर्याप्त अवस्था में सम्यग्दर्शन और देश संयम भी हो सकता है तब आगे के गुणस्थान और मोक्ष भी उसके हो सकते है? इस शङ्का के उत्तर में आचार्य कहते हैं कि यह शङ्का भी ठीक नहीं है, क्योंकि द्रव्य स्त्री वस्त्र सहित रहती है इसलिये वह अप्रत्याख्यान (असंयत-देश संयत) गुणस्थान तक ही रहती है, ऐसी अवस्था में उसके संयम (छटा गुणस्थान) पैदा नहीं हो सकता है।

यहां पर शंकाकार ने द्रव्य स्त्री पद कहकर शंका उठाई है, और उत्तर देते समय आचार्य ने भी द्रव्यस्त्री मानकर ही उत्तर दिया है। क्योंकि वस्त्रसहित होने से द्रव्यस्त्री के संयम नहीं हो सकता है, वह असंयम गुणस्थान तक ही रहती है यह कथन द्रव्य स्त्री के लिये ही हो सकता है। भावस्त्री की अपेक्षा यदि ९३वें सूत्र में होती तो उत्तर में आचार्य 'वस्त्र सहित और अप्रत्याख्यान गुणस्थित' ऐसे पद कदापि नहीं दे सकते थे। भाव स्त्री के तो वस्त्र का कोई सम्बन्ध नहीं है और उसके तो ९ गुण-स्थान तक होते हैं। और १४ गुणस्थान तथा मोक्ष तक इसी शास्त्र में बताई गई है। इससे सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि शङ्का तो द्रव्य स्त्री का नाम लेकर ही की गई है, उत्तर भी आचार्य ने द्रव्यस्त्री का ग्रहण मानकर ही दिया है।

यदि ९३वें सूत्र में 'संजद' पद होता तो उत्तर में आचार्य

'वस्त्र सहित होना, असंयम गुणस्थान में रहना और संयम का उत्पन्न नहीं होना' ये तीन हेतु किसी प्रकार नहीं दे सकते थे क्योंकि जब सूत्र में संयम पद मान लिया जाता है तब ऊपर कहे गये तीनों हेतु नहीं बन सकते हैं। संयम अवस्था में न तो वस्त्र सहितपना है। और न असंयमपना कहा जा सकता है तथा सूत्र में संयम पद जब बताया जाता है। 'तब संयम उन मानुषियों के नहीं हो सकता है' यह उत्तर नहीं दिया जा सकता है। संयम पद के रहते हुये संयम उन मानुषियों के नहीं हो सकता है ऐसा कहना पूर्वापर विरुद्ध ठहरता है। भाववेद वादियों को इस शङ्का समाधान एवं धवला के उत्तर में कहे गये पदों पर ध्यान पूर्वक विचार करना चाहिये।

भाव-पक्षी विद्वान यह कहते हैं कि यदि सूत्र में सञ्जद पद नहीं होता तो फिर इसी सूत्र से द्रव्य स्त्रियों के मोक्ष हो सकती है ऐसी शङ्का किस प्रकार उठाई जाती? भावपक्षी विद्वानों की इस तर्कणा के उत्तर में यह समझ लेना चाहिये कि शङ्का यह मानकर उठाई गई है कि जब द्रव्यस्त्रियों के पर्याप्त अवस्था में सम्यग्दर्शन और देशसंयम भी हो जाता है तो फिर पर्याप्त मनुष्य के समान उनके मोक्ष भी हो सकतो है आगे के संयम गुण स्थान भी हो सकेंगे? यदि सूत्र में संजद पद होता तब तो फिर शङ्का उठने केलिये कोई स्थान ही नहीं था जैसे मनुष्य की अपेक्षा से कहे गये ६०-६१वें सूत्र में पर्याप्त अवस्था में 'संजद' पद दिया गया है

वहां १४ गुणस्थान और मोक्ष होने की कोई शंका नहीं उठाई गई है क्योंकि संयम पद से यह बात सुतरां सिद्ध है। उसी प्रकार यदि ६३वें सूत्र में भी संयम पद होता तो फिर १४ गुणस्थान और मोक्ष का होना सुतरां सिद्ध था, शंका उठाने का फिर कोई कारण ही नहीं था। सूत्र में संयम पद नहीं है और द्रव्यस्त्री के पर्याप्त अवस्था में सम्यग्दर्शन और देश सयम तक बताये गये हैं तभी शंका उठाई गई है जैसे 'पर्याप्त अवस्थामें उसके सम्यग्दर्शन और देश सयम भी हो जाता है तो आगे के गुणस्थान भी हो जायंगे और मोक्ष भी हो जायगी ?'

फिर शका तो कैसी भी की जा सकती है उत्तर पर भी तो ध्यान देना चाहिये। यदि सूत्र में संयम पद होता तो उत्तर में यह बात कहने के लिये थोड़ा भी स्थान नहीं था कि 'वस्त्र सहित होने से तथा असंयम गुणस्थान में ही रहने से संयम की उत्पत्ति नहीं हो सकती।' जब सूत्रमें संयमपद माना जाता है तब 'सयम नहीं हो सकता है' ऐसा सूत्र-विरुद्ध कथन धवलाकार उत्तर में कैसे कर सकते थे ? कभी नहीं कर सकते थे। अतः स्पष्ट सिद्ध है कि ६३वां सूत्र भाववेद की अपेक्षा से नहीं है किन्तु द्रव्य स्त्री वेद की प्रधानता से ही कहा गया है अतः उसमें संयम पद किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं हो सकता है। धवलाकार के उत्तर का ध्यान में देने से ६३ वें सूत्र में "संजद" पद के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं हो सकती है। आगे और भी खुलासा देखिये—

भावसंयमस्तासां सवाससामपि अविरुद्ध इतिचेन्, न तासां भावसंयमोऽस्ति भावाऽसंयमाविनाभाविवस्त्राद्युपादानान्यथाऽनुपपत्तेः

अर्थ- शंका -- उन मानुषियों के वस्त्र सहित रहने पर भी भाव संयम के होने में तो कोई विरोध नहीं है ?

उत्तर— ऐसी भी शंका ठीक नहीं है, उनके भाव संयम भी नहीं है। क्योंकि भाव असंयम का अविनाभावी वस्त्रादि का ग्रहण है, वह ग्रहण फिर अन्यथा नहीं उत्पन्न होगा।

विशेष—शंकाकार ने यह शंका उठाई है कि यदि द्रव्य-स्त्रियों के वस्त्र रहते हैं तो वैसी अवस्था में उनके द्रव्य संयम (नग्नता-दिगम्बर मुनि रूप) नहीं हो सकता है तो मत होओ। परन्तु भावसंयम तो उनके वस्त्रधारण करने पर भी हो सकता है, क्योंकि वह तो आत्मा का परिणाम है वह हो जायगा। इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं कि यह बात भी नहीं है वस्त्र धारण करने पर उन स्त्रियों के भाव संयम भी नहीं हो सकता है। क्योंकि भाव संयम का विरोधी वस्त्र ग्रहण है। वह वस्त्र स्त्रियों के पास रहता है। इसलिये उनके असंयम भाव ही रहता है। संयम भाव नहीं हो सकता है। अर्थात् बिना वस्त्रों का परित्याग किये छठा गुणस्थान नहीं हो सकता है।

यहां पर यह स्पष्ट कर दिया गया है कि ९३वें सूत्र में जिन मानुषियों का कथन है वे वस्त्र सहित हैं, इस लिये उनके द्रव्य-संयम और भाव संयम दोनों ही नहीं होते हैं। इस स्पष्ट खुलासा

से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे मानुषियां द्रव्यस्त्रियां ही हैं। यदि भावस्त्री का प्रकरण और कथन होता तो वस्त्र सहितपना उनके कैसे कहा जाता, जबकि भावस्त्री नौवें गुणस्थान तक रहती है और यदि ६३वें सूत्र में संयम पद होता तो आचार्य यह उत्तर कदापि नहीं दे सकते थे कि उन स्त्रियों के द्रव्य संयम भी नहीं है और भावसंयम भी नहीं है।

दूसरे—यदि सूत्र में संयम पद होता तो 'द्रव्यस्त्रियों के इसी सूत्र से मोक्ष हो जायगी' इसके उत्तर में आचार्य यह कहे बिना नहीं रहते कि यहां पर भावस्त्री का प्रकरण है, भावस्त्री की अपेक्षा रहने से द्रव्यस्त्रियों की मोक्ष का प्रश्न खड़ा ही नहीं होता। परन्तु आचार्य ने ऐसा उत्तर कहीं भी इस धवला में नहीं दिया है। प्रत्युत यह बार २ कहा है कि स्त्रियां वस्त्र सहित रहती हैं इसलिये उनके द्रव्य संयम और भाव संयम कोई संयम नहीं हो सकता है इससे यह बात स्पष्ट-खुलासा हो जाती है कि यह ६३वें सूत्र की मानुषी द्रव्यस्त्री है और इसीलिये सूत्रमें संयम पद का सर्वथा निषेध आचार्य ने किया है। उसका मूल हेतु यह है कि यह योग मार्गणा-औदारिक काययोग का कथन है, औदारिक काययोग में पर्याप्त अवस्था रहती है इसलिये द्रव्यस्त्री का ही ग्रहण इस सूत्र में अनिवार्य सिद्ध होता है। अतः संयम पद सूत्र में सर्वथा असम्भव है। इस सब कथन को स्पष्ट देखते हुये भी भावपक्षी विद्वानों का सूत्र में संयम पद बताना आश्चर्य में डालता है।

कथं पुनस्तासु चतुर्दश गुणस्थानानीतिचेन्न, भावस्त्रीविशिष्ट मनुष्यगतौ तत्सत्त्वाऽविरोधात्।

अर्थ—शंका—उन स्त्रियोंमें फिर चौदह गुणस्थान कैसे बताये गये हैं ?

उत्तर—यह शंका भी ठीक नहीं है, भावस्त्री विशिष्ट मनुष्य-गति में उनके सत्व का अविरोध है।

विशेष—शंकाकार ने यह शंका की है कि जब आप (आचार्य) स्त्रियों को वस्त्र सहित होने से द्रव्यसंयम और भाव-संयम दोनों का उनमें अभाव बताते हो तब उनके इस शास्त्र में जहां पर चौदह गुणस्थान बताये गये हैं वे कैसे बनेंगे ? उत्तर में आचार्य कहते हैं कि जहां पर स्त्रियों के चौदह गुणस्थान बताये गये हैं। वह भाव स्त्री विशिष्ट मनुष्यगति की अपेक्षा से बताये गये हैं। भावस्त्री सहित मनुष्यगति में चौदह गुणस्थान होने में कोई विरोध नहीं आ सकता है।

यहां पर यह समझ लेना चाहिये कि जैसे ऊपर की शंका और समाधान में दो बार "अस्मादेव आर्षात्" इसी आर्ष से अर्थात् 'इसी सूत्र से' ऐसा उल्लेख किया गया है वैसा उल्लेख इस चौदह गुणस्थान बताने वाली शंका में और समाधान में नहीं किया गया है। यदि सूत्र में संजद पद होता तो शंकाकार अवश्य कहता कि संजद पद रहने से इसी ९३वें सूत्र में चौदह गुणस्थान फिर कैसे बताये गये हैं ? परन्तु ऐसी शंका नहीं की गई है,

उत्तर में भी इस सूत्र का कोई उल्लेख नहीं है। यह शंका एक सम्बन्धित-आशंका रूप में सामान्य शंका है जो इस सूत्र से कोई सम्बन्ध नहीं रखती है इस प्रकार की आशंका भी तभी हुई है जबकि इस आर्ष (सूत्र) में दोनों संयमों का सर्वथा अभाव बताकर स्त्रियों के वस्त्रधारण और असंयम गुणस्थान बताया गया है। ऐसी दशा में ही यह शंका की गई है फिर जहां पर स्त्रियों के १४ गुणस्थान कहे गये हैं वे किस दृष्टि से कहे गये हैं? इस शंका के समाधान से भी सिद्ध हो जाता है कि यह ६३वां सूत्र द्रव्यस्त्री का प्रतिपादक है। भावस्त्री के प्रकरण (वेदानुवाद आदि) में ही चौदह गुणस्थान कहे गये हैं इस सूत्र में तो योग मार्गणा और पर्याप्ति सम्बध का प्रकरण होनेसे द्रव्यस्त्री का ही कथन है और इसीलिये इस ६३वें सूत्र में पांच गुणस्थान बताये गये हैं। यदि सूत्र में संजद पद होता तो जैसे वेदानुवाद आदि आगे के सूत्रों में सर्वत्र मणुस्सातिवेदा मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टित्ति। (सूत्र १०८) यानी 'मिथ्यादृष्टिसे लेकर ६वें गुणस्थान तक' ऐसा कथन किया है वहां प्रभृति कहकर नौ गुणस्थान सर्वत्र बताये गये हैं वैसे इस सूत्र में भी प्रभृति कहकर बता देते। परन्तु यहां पर वैसा कथन नहीं किया गया है। जहां प्रभृति शब्द से नौ गुणस्थानों का कथन है वहां पर चौदह गुणस्थानों की कोई शंका भी नहीं उठाई गई।

यहां पर ६३वें सूत्र में यदि संजद पद होता तो फिर चौदह गुणस्थान जहां बताये गये हैं वे कैसे बनेंगे ऐसी शंका का कोई

कारण ही नहीं था। क्योंकि सञ्जद पद के रहने से चौदह गुण-स्थानों का होना सुतरां सिद्ध था।

भाववेदो बादरकषायान्नोपर्यस्तीति न तत्र चतुर्दश गुणस्थानानां सम्भव इतिचेन्न अत्र वेदस्य प्रधान्याभावात् गतिस्तु प्रधाना, न सा आराद् विनश्यति।

अर्थ—शङ्का—भाववेद तो बादर कषाय से ऊपर नहीं रहता है इसलिये वहां पर चौदह गुणस्थानों का सम्भवपना नहीं हो सकता है ?

उत्तर—यह शङ्का भी ठीक नहीं है, यहां पर वेद की प्रधानता नहीं है। गति तो प्रधान है वह चौदह गुणस्थान से पहले नष्ट नहीं होती है।

विशेष—शङ्काकार का यह कहना है कि जब भाववेद की अपेक्षा से चौदह गुणस्थान बताये गये हैं ऐसा कहते हो तो भाव वेद तो बादर कषाय—नौवें गुणस्थान तक ही रहता है। वेद तो नौवें गुणस्थान के सवेदभाग में ही नष्ट हो जाता है फिर भावस्त्री के चौदह गुणस्थान कैसे घटित होंगे ? इसके उत्तर में आचार्य कहते हैं कि जहां पर भावस्त्री के चौदह गुणस्थान बताये गये हैं वहां पर वेद की प्रधानता नहीं है किन्तु गति की प्रधानता है। मनुष्यगति चौदह गुणस्थान तक बनी रहती है उसी अपेक्षासे १४ गुणस्थान कहे गये हैं।

वेदविशेषणायां गतौ न तानि सम्भवंतीतिचेन्न विनष्टेऽपि विशे-

षणे उपचारेण तद्व्यपदेशमादधानमनुष्यगतौ तत्सत्वाऽविरोधात्।

अर्थ—शङ्का—वेद विशेषण सहित गति में तो चौदह गुण-स्थान नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर—यह शङ्का भी ठीक नहीं, विशेषण के नष्ट होने पर भी उपचार से उसी व्यवहार को धारण करने वाली मनुष्य गति में चौदह गुणस्थानों की सत्ता का कोई विरोध नहीं है।

विशेष—शङ्काकार का यह कहना है कि जब भाववेद नौवें गुणस्थान में ही नष्ट हो जाता है तब भाववेद की अपेक्षा से भी चौदह गुणस्थान कैसे बनेंगे ? उत्तर में आचार्य कहते हैं कि यद्यपि वेद नष्ट हो गया है फिर भी वेद के साथ रहने वाली मनुष्यगति तो है ही है। इसलिये जो मनुष्यगति नौवें गुणस्थान तक वेद सहित थी वही मनुष्यगति वेद नष्ट होने पर भी अब भी है, इसलिये (ग्यारहवें बारहवें और तेरहवें गुणस्थानों में कषाय नष्ट होने पर भी योग के सद्भाव में उपचार से कही गई लेश्या के समान) वेद रहित मनुष्यगति में भी चौदह गुणस्थान कहे गये हैं। वे भूतपूर्व नय की अपेक्षा से उपचार से भाववेद की अपेक्षा से कहे गये हैं।

मनुष्याऽपर्याप्तेष्वपर्याप्तिप्रतिपक्षाभावतः सुगमत्वात् न तत्र वक्तव्यमस्ति।

अर्थ—अपर्याप्त मनुष्योंमें अपर्याप्ति के प्रतिपक्ष का अभाव होने से सुगम है, इस लिये वहां पर कुछ वक्तव्य नहीं है।

विशेष—मनुष्यों के पर्याप्त मनुष्य, सामान्य मनुष्य, मानुषी और अपर्याप्त मनुष्य, इन चार भेदों में अन्त के अपर्याप्त मनुष्यों को छोड़ कर शेष तीन भेदों में विशेष वक्तव्य इस लिये है कि वहां पर्याप्ति का प्रतिपक्षी निर्वृत्यपर्याप्ति है। परन्तु मनुष्य के लब्ध्यपर्याप्तक भेद में उसका कोई प्रतिपक्षी नहीं है। अतः उस सम्बन्ध में कोई विशेष वक्तव्य भी नहीं है।

इस लब्ध्यपर्याप्तक के कथन से भी केवल द्रव्यवेद का ही कथन सिद्ध होता है, क्योंकि उसमें भाववेद की अपेक्षा से कथन बनता ही नहीं है।

बस ६३ वें सूत्र में पड़े हुये पदों का और धवलाकार का पूरा अभिप्राय हमने यहां लिख दिया है। अर्थ में धवला की पंक्तियों का ठीक शब्दार्थ किया है और जहां विशेष शब्द है वहां हमने उसी धवला के शब्दार्थ को विशेषरूप से स्पष्ट किया है। कोई शब्द या वाक्य हमने ऐसा नहीं लिखा है जो सूत्र और धवला के वाक्यों से विरुद्ध हो। ग्रन्थ और उसके अभिप्राय के विरुद्ध एक अक्षर लिखने को भी हम असह्य अपराध एवं शास्त्र का अवर्णवादात्मक सब से बढ़कर पाप समझते हैं। इस विवेचन से पाठक एवं भावपक्षी विद्वान् शास्त्र-मर्मस्पर्शी बुद्धि से गवेषणा पूर्वक विचार करें कि सूत्र ६३वें में "संजद" पद जोड़नेकी किसी प्रकार भी गुञ्जायश हो सकती है क्या? उत्तर में पूर्वापर क्रमवर्ति निरूपण, सूत्र एवं धवला के पदों पर विचार करनेसे वे

यही निर्णीत सिद्ध फलितार्थ निकालेंगे कि ९३वें सूत्र में किसी प्रकार की संयत पद के जोड़ने की सम्भावना नहीं है। क्योंकि वह सूत्र पर्याप्त द्रव्यस्त्री के ही गुणस्थानों का प्रतिपादक है।

इन सूत्रों को भाववेद विधायक मानने में

—अनेक अनिवार्य दोष—

भावपक्षी विद्वान इन सूत्रों को भाववेद विधायक ही मानते हैं उनके वैसा मानने में नीचे लिखे अनेक ऐसे दोष उत्पन्न होते हैं, जो दूर नहीं किये जा सकते हैं, उन्हीं का दिग्दर्शन हम यहां कराते हैं।

षट्खण्डागम के धवल सिद्धांत का ८९वां सूत्र अपर्याप्त मनुष्य के लिये कहा गया है, उसके द्वारा अपर्याप्त मनुष्य के पहला दूसरा और चौथा ये तीन गुणस्थान बताये गये हैं, परन्तु सभी भावपक्षी विद्वान उस सूत्र को भी भाववेद वाला ही बताते हैं, अतः उनके कथनानुसार भावमनुष्य का ही विधायक ८९वां सूत्र ठहरता है। ऐसी अवस्था में उसे द्रव्यस्त्री शरीर और भाव पुरुष वेद का विधायक भी माना जा सकता है। ऐसा मानने से द्रव्य स्त्री की अपर्याप्त अवस्था में भी सम्यग्दर्शन सहित उत्पत्ति सिद्ध होती है। यदि यह कहा जाय कि ८९ सूत्र भाववेद से भी पुरुष-वेद का विधायक है और द्रव्यवेद भी इस सूत्र में द्रव्य पुरुष ही मानना चाहिये, जैसा कि श्री फूलचन्द जी शास्त्री अपने लेख में लिखते हैं कि— "सो मालूम नहीं पड़ता कि पण्डित जी (हम)

ऐसा क्यों लिखते हैं, यदि यह जीव भाव और द्रव्य दोनों से पुरुष रहे तो इसमें क्या आपत्ति है ?"

इसके उत्तर में हमारा यह समाधान है कि हमें उसमें भी कोई आपत्ति नहीं कि भाववेद और द्रव्यवेद दोनों पुरुषवेद रहें परन्तु वस्तु विचार की दृष्टि से ग्रन्थकार वहां तक विचार कर सूत्र एवं शास्त्र रचना करते हैं जहां तक कोई व्यभिचार, दोष नहीं आ सके। इस ८६वें सूत्रमें भाववेद पुरुष का ग्रहण तो माना जायगा क्योंकि मनुष्य-पुरुष की विवक्षा का विधायक सूत्र है परन्तु वह द्रव्य से भी मनुष्य (पुरुष) ही होगा, ऐसा मानने में कौन सा प्रमाण अनिवार्य हो जाता है ? जबकि भाववेद पक्ष में विषम भी द्रव्य शरीर होता है। तब द्रव्य स्त्री शरीर और भाववेद मनुष्य मानने में भी कोई रुकावट किसी प्रमाण से नहीं आती है। वैसी दशा में द्रव्य स्त्री की अपर्याप्त अवस्था में भी चौथा गुणस्थान सिद्ध होगा इस बात का समाधान भाववेदी विद्वान क्या दे सकते हैं ?

भाववेदी विद्वानों के मत और कहने के अनुसार यदि ८६वें सूत्र को भाववेद और द्रव्यवेद दोनों से पुरुषवेद का निरूपक ही माना जायगा तो उसकी अपर्याप्त अवस्था में सयोग केवली—तेरहवां गुणस्थान भी सिद्ध होगा। जिस प्रकार आलापाधिकार में अपर्याप्त मानुषी के पहला दूसरा और तेरहवां ये तीन गुणस्थान बताये गये हैं उसी प्रकार यहां पर भी होंगे। भाववेद का कथन उनके मत से दोनों स्थानों में समान है।

भाववेदी विद्वान अपर्याप्ति का अर्थ जन्मकाल में होने वाली शरीर रचना अथवा शरीर निर्वृत्ति रूप अर्थ तो मानते नहीं है। यदि अपर्याप्ति का अर्थ वे शरीर की अपूर्णता करते हैं तब तो ८६वें सूत्र से द्रव्य शरीर अथवा द्रव्यवेद की ही सिद्धि होगी। क्योंकि यहां पर वेद मार्गणा का कथन तो नहीं है जो कि नोकषाय जनित भाववेद रूप हो किन्तु शरीर नामकर्म, आंगोपांग नामकर्म और पर्याप्ति नामकर्म के उदय से होने वाली शरीर निर्वृत्ति का कथन है। वह द्रव्यवेद की विवक्षा में ही घटेगा। और जिस प्रकार इस सूत्र द्वारा द्रव्यवेद माना जायगा तो ९२-९३ सूत्रों द्वारा भी द्रव्यस्त्री का कथन मानना पड़ेगा। परन्तु जबकि वे लोग सर्वत्र भाववेद मानते हैं तब इस ८६वें सूत्र में अपर्याप्त मनुष्य के सयोग केवली गुणस्थान भी अनिवार्य सिद्ध होगा। क्योंकि समुद्घात की अपेक्षा से औदारिक मिश्र और कार्माण काययोग में अपर्याप्त अवस्था मानी गई है अतः वहां पर तेरहवां गुणस्थान भी सिद्ध होगा। परन्तु सूत्र में पहला दूसरा और चौथा, ये तीन गुणस्थान ही अपर्याप्त मनुष्य के बताये गये हैं? सो कैसे? इसका समाधान भाववेद-वादी विद्वान क्या करते हैं? सो स्पष्ट करें।

दूसरी बात हम उनसे यह भी पूछना चाहते हैं कि एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक सर्वत्र निर्वृत्त्यपर्याप्तक का अर्थ वे क्या करते हैं? षटखण्डागम में सर्वत्र (१०० सूत्रों तक) शरीर की अनिष्पत्ति (शरीर रचना की अपूर्णता) अर्थ किया

गया है। इसे वह मानते हैं या नहीं? यदि मानते हैं तो वेदमार्गणा का कथन नहीं होने पर भी पुंवेद की विवक्षा में उन्हें उस सूत्र को द्रव्य मनुष्य का विधायक मानना पड़ेगा। यदि वैसा वे नहीं मानते हैं तो क्या वे धवल सिद्धांत के शरीर निर्वृत्ति-अनिष्पत्ति रूप, पर्याप्ति अपर्याप्ति के अर्थ का प्रत्यक्ष-अपलाप करनेवाले नहीं ठहरेंगे? अवश्य ठहरेंगे। इसका भी खुलासा करें।

जब सर्वत्र वे भाववेद की ही मुख्यता मानते हैं तब उनके मत से योग मार्गणा में पर्याप्ति अपर्याप्ति का अर्थ क्या होगा? यह बात भी वे खुलासा करने की कृपा करें। साथ ही यह भी खुलासा करें कि वेदमार्गणा का प्रकरण नहीं होने पर मनुष्य या मानुषी की विवक्षा में उनकी पर्याप्ति अपर्याप्ति अवस्था में नियत निर्दिष्ट गुणस्थानों का सङ्घठन कैसे होगा?

इसी प्रकार ६०वां सूत्र पर्याप्त मनुष्य का विधायक है। और चौदह गुणस्थान का विधान करता है। वह भी भाववेदी विद्वानों के मत से भाववेद मनुष्य का ही विधायक है तब वहां पर भी यही दोष आता है कि भाववेदी पुरुष और द्रव्यकी शरीर माना जाय तो कौन बाधक है? कोई नहीं। वैसी अवस्था में द्रव्यस्त्री के उक्त सूत्र से चौदह गुणस्थान नियम से सिद्ध होंगे। यदि कोई प्रमाण इस बात को रोकने वाला हो तो भावपक्षी विद्वान सबसे पहले वे ही प्रमाण प्रसिद्ध करें हम उन पर विचार करेंगे। इस ६०वें सूत्र में भी यदि भाववेद और द्रव्यवेद दोनों ही समान हों अर्थात् एक हों तो इसमें भी हमें कोई आपत्ति नहीं है वैसा भी हो सकता

है परन्तु ऐसा ही हो और द्रव्यवेद स्त्रीवेद तथा भाववेद पुरुषवेद ऐसा विषम वेद नहीं हो सके इसमें भी क्या बाधक प्रमाण है? जबकि भाववेद 'पायेण समा कहिं विसमा' इस गोम्मटसार की गाथा के अनुसार विषम भी होता है।

इसी प्रकार ९२वें सूत्र में मानुषी का विधान अपर्याप्त अवस्था का है उसमें उसके दो गुणस्थान पहला और दूसरा बताया गया है। वहां पर भाववेद स्त्रीवेद तो मानना ही पड़ेगा क्योंकि मानुषी का वचन है। परन्तु भाववेद और स्त्रीवेद होने पर भी वहां द्रव्य वेद पुरुषवेद भी हो सकता है इसमें भी कोई बाधा नहीं है। वैसी दशा में ९२वें सूत्र द्वारा भाववेदी मानुषी और द्रव्यवेदी पुरुष के अपर्याप्त अवस्था में दो गुणस्थान ही नहीं होंगे किन्तु तीसरा असंयत सम्यग्दृष्टि नाम का चौथा गुणस्थान भी होगा उसे कौन रोक सकता है? उसी प्रकार भाववेद स्त्रीवेद की अपर्याप्त अवस्था में सयोग केवली गुणस्थान भी अनिवार्य सिद्ध होगा। फिर इस सूत्र में दो ही गुणस्थान क्यों कहे गये हैं? इस पर भाववेदी विद्वानों को पूर्ण विचार करना चाहिये।

यहां पर भाववेदी विद्वानों का यह उत्तर है कि स्त्रीवेद का उदय चौथे गुणस्थान में नहीं होता है इसके लिये वे गोम्मटसार कर्मकांड की अनेक गाथाओं का प्रमाण देते हैं कि अपर्याप्त अवस्था में चौथे गुणस्थान में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है, उस की व्युच्छित्ति दूसरे सासादन गुणस्थान में ही हो जाती है। यह कहना उनका अधूरा है पूरा नहीं है। वे एक अंश अपने प्रयोजन

सिद्धि का प्रगट कर रहे हैं दूसरे को छिपा रहे हैं। दूसरा अंश यह है कि चौथे गुणस्थान वाला सम्यग्दर्शन को साथ लेकर द्रव्य स्त्री पर्याय में नहीं पैदा होता है। इसीलिये उसके द्रव्यस्त्री के अपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान नहीं होता है, प्रमाण देखिये—

अयदापुण्णे णहि थी सढोवि य घम्मणारयं मुच्चा।
थी सढयदे कमसो णाणुचऊ चरिम तिण्णाणू।

(गोम्मटसार कर्म० गाथा २८७ पृ० ४११)

इस गाथा की व्याख्या में यह स्पष्ट किया गया है—

निर्वृत्यपर्याप्तासंयते स्त्रीवेदोदयो नहि, असंयतस्य स्त्रीत्वे—नाऽनुत्पत्तेः। षंढवेदोदयोऽपि च नहि, षंढत्वेनापि तत्रानुत्पत्तेः।

नुत्पत्तेः अयमुत्सर्गविधिः प्राग्बद्धनरकायुस्तिर्यङ्मनुष्ययोः सम्यक्त्वेन समं घर्मायामुत्पत्ति सम्भवात् तेन असंयते स्त्रीवेदिनि चतुर्णां, षंढवेदिनि त्रयाणां चानुपूर्वीणां उदयो नास्ति।

(गो० कर्म० पृ० ४१३-४१४ टीका)

इस गाथा की वृत्ति का अर्थ पण्डित-प्रवर टोडरमल जी ने इस प्रकार किया है—

"निर्वृत्ति-अपर्याप्तक असंयत गुणस्थान विषें स्त्रीवेद का उदय नाहीं, जाते असंयत मरि स्त्री नाहीं उपजे है। बहुरि घर्मा नरक बिना नपुंसकवेद का भी उदय नाहीं, जातें पूर्वे नरकायु बांधी होइ ऐसे तिर्यंच वा मनुष्य सम्यक्त्व सहित मरि घर्मा नरक विषें ही उपजे हैं। याही तें असंयत विषें स्त्रीवेदी के तो चारों

आनुपूर्वी का उदय नाहीं। नपुंसक के नरक बिना तीन आनुपूर्वी का उदय नाहीं है।"

इस कथन से इस बात के समझ में कोई सन्देह किसी को भी नहीं हो सकता है कि यह सब कथन द्रव्यस्त्री और द्रव्यनपुंसक का है। बहुत ही पुष्ट एवं अकाट्य प्रमाण यह दिया गया है कि चौथे गुणस्थान में चारों आनुपूर्वी का उदय स्त्रीवेदी के नहीं है। आनुपूर्वी का उदय विग्रह गति में ही होता है। क्योंकि वह क्षेत्र विपाकी प्रकृति है। और सम्यग्दर्शन सहित जीव मरकर द्रव्यस्त्री पर्याय में जाता नहीं है अतः किसी भी आनुपूर्वी का उदय वहां नहीं होता है। परन्तु पहले नरक में, सम्यग्दर्शन सहित मरकर जाता है अतः वहां नरकानुपूर्वी का तो उदय होता है शेष तीन आनुपूर्वी का उदय नहीं होता है। इस कथन से स्पष्ट है कि अपर्याप्त अवस्था में जन्म मरण एवं आनुपूर्वी का अनुदय होने से द्रव्यस्त्री का ही ग्रहण ऊपर की गाथा और टीका से होता है।

परन्तु ९३वें सूत्रको यदि भाववेदका ही निरूपक माना जाता है तो वहां जन्म मरण एवं आनुपूर्वी के अनुदय आदि का तो कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भाववेद स्त्री के अपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान होने में कोई बाधा नहीं है जहां द्रव्यवेद पुरुष हो और भाववेद स्त्री हो वहां अपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान नहीं होता है ऐसा कोई प्रमाण हो तो उपस्थित करना चाहिये। गो—म्मटसार के जितने भी प्रमाण-- सारण थी वेद छिदी, आदि इस स्त्री अपर्याप्त के प्रकरण में दिये जाते हैं वे तो सब द्रव्य स्त्री

पर्याय में उत्पन्न नहीं होने की अपेक्षा से है। फिर यह बात भी विचित्र है कि अपर्याप्त मनुष्यनी का विधायक तो सूत्र है उसका ग्रहण नहीं कर शरीर की अपूर्णता द्रव्य पुरुष की बताई जाय? यह कौन सा हेतु है? जहां जिसकी अपर्याप्ति होगी वहां उसी का अपर्याप्त शरीर लिया जायगा। यदि यह कहा जाय कि भाव स्त्री और द्रव्यस्त्री दोनों रूप ही ६२वें सूत्र को मानेंगे तो भी द्रव्य-स्त्री का कथन सिद्ध होता है। यह कहना भी प्रमाण शून्य है कि द्रव्यवेद पुरुष का होने पर भी चौथे गुणस्थान में अपर्याप्त अवस्था में भावस्त्री वेद का उदय नहीं होता है। जबकि भावस्त्री वेद के उदय में नौवां गुणस्थान होता है तब चौथा होने में क्या बाधकता है? हो तो भावपक्षी विद्वान प्रगट करें! अतः इस कथन से सिद्ध है कि ६२वां सूत्र द्रव्यस्त्री का ही प्रतिपादक है। गोम्मटसार की उपर्युक्त २८७ गाथा से यह भी सिद्ध है कि गो—म्मटसार भी द्रव्यवेद अथवा द्रव्य शरीर का विधान करता है। यह निर्विवाद बात है और प्रत्यक्ष है।

—भाववेद मानने से ९३वें सूत्र में दोष—

इसी प्रकार ९३वें सूत्र को यदि भाववेद का ही प्रतिपादक माना जायगा तो जैसे पर्याप्त अवस्था में भावस्त्री वेद के साथ द्रव्य पुरुष वेद हो सकता है, वैसे द्रव्यस्त्री वेद भी हो सकता है। ९३वें सूत्र में भाव और द्रव्य समवेद भी माना जा सकता है। वैसी अवस्था में सूत्र ९३वें में 'संजद' पद जोड़ने से द्रव्य स्त्री के चौदह गुणस्थान सिद्ध होंगे, उसका निरसन भावपक्षी विद्वान

क्या कर सकते हैं ? इसलिये उपर्युक्त सभी सूत्र पर्याप्ति अपर्याप्ति के साथ गुणस्थानों का विधान होने से द्रव्यवेद के ही विधायक हैं, ९२-९३वें सूत्र भी द्रव्यस्त्री के ही विधायक हैं। वैसा सिद्धांत-सिद्ध निर्णय मानने से न तो 'संयत' पद जोड़ा जा सकता है और न उपर्युक्त दूषण ही आ सकते हैं।

९३वां सूत्र द्रव्यवेदका ही क्यों है ? भाववेद क्यों नहीं ?

९३वें सूत्रमें जो मानुषी पद है वह मानुषी द्रव्यस्त्री ही ली जाती है। भावस्त्री नहीं ली जा सकती है इसका एक मूल-खास हेतु यही भावपक्षी विद्वानों को समझ लेना चाहिये कि यहां पर वेद मार्गणा का प्रकरण नहीं है जिसमें भाववेद रूप नोकषाय के उदय जनित भाव परिणाम लिया जाय। किन्तु यहां पर औदारिक काययोग व पर्याप्ति का प्रकरण होनेसे आंगोपांग नामकर्म शरीर नामकर्म गतिनामकर्म एवं निर्माण आदि नामकर्मोंके उदय से बनने वाला द्रव्यस्त्री का शरीर ही नियम से लिया जाता है। यह बात इस ९३ सूत्रमें और ९२ आदि पहलेके सूत्रोंमें भावपक्षी विद्वानों को ध्यान में रखकर ही विचार करना चाहिये।

ताड़पत्र प्रति में 'सञ्जद' शब्द

इसी ९३वें सूत्र में 'सञ्जद' पद ताड़पत्र प्रति में बताया जाता है, इस सम्बन्ध में अधिक विचार की आवश्यकता नहीं है, हम तो केवल दो बातें इस सम्बन्ध में कह देना पर्याप्त समझते हैं। पहली बात तो यह है कि यदि ताड़पत्र की प्रतियों में 'सञ्जद' पद

होता तो बहुत खोज के साथ संशोधन पूर्वक नकल की गई कागजकी प्रतियोंमें भी वह पद अवश्य पाया जाता परन्तु वहां वह नहीं है। पूज्य क्षुल्लक सूरिसिंह जी ने मूड़बिद्री जाकर सभी प्रतियां देखी हैं, उनका कहना है कि, मूल प्रति में तो 'सञ्जद' शब्द नहीं था उसके अनेक पत्र नष्ट हो चुके हैं, दूसरी प्रति में 'सञ्जद' के पहले 'ट' भी जुड़ा हुआ है, तीसरी प्रति में 'सञ्जद' शब्द पाया जाता है। इस प्रकार अशुद्ध एवं सब प्रतियों में 'सञ्जद' शब्द का उल्लेख नहीं मिलने से ग्रन्थाधार से भी उसका अस्तित्व निर्णीत नहीं है। फिर यदि ताड़पत्र की किसी प्रति में वह मिलता भी है तो वह लेखक की भूल से लिखा गया है यही मानना पड़ेगा, अन्यथा जो सूत्रों में द्रव्य प्रकरण बताया गया है और साथ ही सूत्र में 'सञ्जद' पद मानने से अनेक सूत्रों में उपर्युक्त दोष बताये हैं, वे सब उपस्थित होंगे और अंग सिद्धांत के एक देश ज्ञाता आचार्य भूतबलि पुष्पदंत की कृति भी अधूरी एवं दूषित ठहरेगी जो कि उनके सिद्धांत पारङ्गत एवं अतल स्पर्शी ज्ञान समुद्र को देखते हुये असम्भव है। ताड़पत्र की प्रति में 'सञ्जद' पद के सद्भावके सम्बन्ध में प्रसङ्ग वश इतना लिखना ही हमने पर्याप्त समझा है।

इससे आगेके सूत्रोंमें पर्याप्ति अपर्याप्ति के सम्बन्धसे देवगति के गुणस्थानों का कथन है। वह कथन ७ सूत्रों में है। १००वें सूत्र में उसकी समाप्ति है। उन सब सूत्रों एवं उनकी धवला टीका का उद्धरण देने तथा उन सबों का अर्थ करने से यह लेख बहुत बढ़

जायगा इसलिये, हम इन सब सूत्रों को छोड़ देते हैं। परन्तु इतना समझ लेना चाहिये कि देवगति के सामान्य और विशेष कथनमें जहां पर्याप्ति अपर्याप्ति में सम्भव गुणस्थानों का सूत्रकार और धवलाकार ने कथन किया है वहां सर्वत्र विग्रहगति, कार्मण शरीर मरण, उत्पत्ति आदि के विवेचन से यह स्पष्ट कर दिया है कि वह सब कथन भी द्रव्य शरीर से ही सम्बन्ध रखता है। पाठकगण! एवं भावपक्षी विद्वान चाहें तो सूत्र ९४ से लेकर सूत्र १०० तक सात सूत्रों एवं उनकी धवल टीका को मुद्रित ग्रन्थ में पढ़ लेवें, उदाहरणार्थ एक सूत्र हम यहां देते हैं :

सम्मामिच्छाइट्ठिट्ठाणे णियमा पज्जत्ता।

(सूत्र ९६ पृष्ठ १६८ धवल सिद्धांत)

अर्थ सुगम है।

इसकी धवला टीका में यह स्पष्ट किया गया है। कि कथं ? तेनगुणेन सह तेषां मरणाभावात् अपर्याप्तकालेऽपि सम्यग्मिथ्यात्वगुणस्योत्पत्तेरभावात्। इसका अर्थ यह है कि देव तीसरे गुणस्थान में नियम से पर्याप्त हैं, यह क्यों ? इसके उत्तर में कहते हैं कि तीसरे गुणस्थान में मरण नहीं होता है। तथा अपर्याप्त कालमें भी इस गुणस्थान की उत्पत्ति नहीं होती है, यहां पर सर्वत्र गुणस्थानों का कथन जन्म मरण और पर्याप्त द्रव्य शरीर के आधार पर ही कहा गया है। इसके सिवा षटखण्डागम के ९८वें सूत्र की धवला में 'सनत्कुमारादुपरि न स्त्रियः समुत्पद्यन्ते सौ—धर्मादाविव तदुत्पत्त्यप्रतिपादानात् तत्र स्त्रीणामभावे कथं तेषां देवा—

नामनुपशांततत्संतापानां सुखमितिचेन्न तत्स्त्रीणां सौधर्मकल्पोपपत्तेः

(पृ० १६६ धवला)

अर्थ—सनत्कुमार स्वर्ग से लेकर ऊपर स्त्रियां उत्पन्न नहीं होती हैं, क्योंकि सौधर्म और ईशान स्वर्ग में देवांगनाओं के उत्पन्न होने का जिस प्रकार कथन किया गया है, उस प्रकार आगे के स्वर्गों में उनकी उत्पत्ति का कथन नहीं किया गया है इसलिये वहां स्त्रियों के अभाव रहने पर जिनकी स्त्री सम्बन्धी सन्ताप शांत नहीं हुआ है ऐसे देवों के उनके बिना सुख कैसे हो सकता है? उत्तर—नहीं क्योंकि सनत्कुमार आदि कल्प सम्बन्धी स्त्रियों की सौधर्म और ईशान स्वर्ग में उत्पत्ति होती है।

इस धवला के कथन से यह 'द्रव्यस्त्रियोंका ही कथन है भाव-स्त्री का किसी प्रकार सम्भव नहीं हो सकता है' यह बात स्पष्ट कर दी गई है। फिर आश्चर्य है कि 'समूचे षटखण्डागम में भाववेद का ही कथन है, द्रव्यवेद का नहीं है' यह बात सभी भावपक्षी विद्वान अपने लेखों में बड़े जोर से लिख रहे हैं? क्या उनकी दृष्टि इन स्पष्ट प्रमाणों पर नहीं गई है? इसके पहले तिर्यंचिनी के प्रकरण में 'सव्व इत्थीसु' ऐसा आर्ष पाठ देकर भी धवलाकार ने स्पष्ट कर दिया है कि देवस्त्रियां, मानुषियां और तिर्यंचिनियां इन तीनों प्रकार की द्रव्यस्त्रियों की उत्पत्ति का वह विधान है जैसा कि धवला के पृष्ठ १०५ में लिखा है। हम पीछे उसका उद्धरण दे चुके हैं।

फिर इसी धवला में देवों और देवांगनाओं के परस्पर प्रवी-

चार का वर्णन भी किया गया है। यथा—

सनत्कुमारमहेन्द्रयोः स्पर्शप्रवीचाराः तत्रतन देवा देवांगना-स्पर्शनमात्रादेव परां प्रीतिमुपलभन्ते इतियावत् तथा देव्योपि।

(धवला पृष्ठ १६१)

अर्थात् सनत्कुमार और माहेन्द्र इन दो स्वर्गों में स्पर्श प्रवी-चार है। उन स्वर्गों के देव देवांगनाओं के स्पर्श करने मात्र से अत्यन्त प्रीति को प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार देवियों भी उन देवों के स्पर्शमात्र से प्रीति प्राप्त हो जाती हैं।

यह सब द्रव्यवेद का बिलकुल खुलासा वर्णन है। द्रव्यपुंलिंग द्रव्यस्त्रीलिंग के बिना क्या स्पर्श सम्भव है? अतः इस द्रव्यवेद के विधान का भी भावपक्षी विद्वान सर्वथा निषेध एवं लोप कैसे कर रहे हैं? सो बहुत आश्चर्य की बात है।

—मूल बात—

श्री षट्खण्डागम के जीवस्थान सत्प्ररूपणा द्वार में जो गति, इन्द्रिय, काय और योग इन चार मार्गणाओं में गुणस्थानों का कथन है। वह सब द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर के ही आश्रित है, उसी प्रकार पर्याप्ति और अपर्याप्ति के साथ गुणस्थानों का कथन भी द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर के आश्रित हैं। क्योंकि षटपर्या-प्तियोंकी पूर्णता और अपूर्णता का स्वरूप द्रव्य शरीर रचना के सिवा दूसरा नहीं हो सकता है, इसलिये सूत्रकार आचार्य भूत-बलि पुष्पदन्त ने तथा धवलाकार आचार्य वीरसेन ने उक्त चारों मार्गणाओं एवं पर्याप्तियों अपर्याप्तियों में जो गुणस्थानों की

सम्भावना और सद्भाव बताया है, वह द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर की मुख्यता से ही बताया है। वहां भाववेद की अपेक्षा से कोई कथन नहीं है। बस यही मूल बात भावपक्षी विद्वानों को समझ लेना चाहिये, इसके समझ लेनेपर फिर '६३वां सूत्र द्रव्यस्त्री का ही विधान करता है। और ऐसी अवस्था में उस सूत्रमें 'सञ्जद' पद नहीं हो सकता है। अन्यथा द्रव्यस्त्री के चौदह गुणस्थान और मोक्ष की प्राप्ति होना भी सिद्ध होगा, जो कि हीन संहनन एवं वस्त्रादि का सद्भाव होने से सर्वथा असम्भव है। ये सब बातें भी उनकी समझ में सहज आ जायगी, इसी मूल बात को दिखाने के लिये हमने उन चारों मार्गणाओं में और पर्याप्तियों में गुणस्थानों का दिग्दर्शन इस लेख (ट्रैक्ट) में कराया है। केवल ६३वें सूत्रका विवेचन कर देने से विशेष स्पष्टीकरण नहीं होता, और संयत पद की बात विवादमें डाल दी जाती। अतः उन उद्धरणोंके देनेसे लेख अवश्य बढ़ गया है परन्तु अब संयतपद के विषय में विवाद का थोड़ा भी स्थान नहीं रहा है।

१००वें सूत्रमें इस द्रव्य शरीर अथवा द्रव्यवेद के विधायक योग निरूपण और पर्याप्तियों के कथन को समाप्त करते हुये धवलाकार स्वयं स्पष्ट करते हैं—

एवं योगनिरूपणावसर एव चतसृषु गतिषु पर्याप्तापर्याप्तकाल-विशिष्टासु सकलगुणस्थानानामभिहितमस्तित्वम्। शेषमार्गणासु अयमर्थः किमिति नाभिधीयते इतिचेत् नोच्यते, अनेनैव गतार्थत्वात् गतिचतुष्टयव्यतिरिक्तमार्गणाभावात्।

(पृष्ठ १७० धवला)

अर्थ—इस प्रकार योग मार्गणा के निरूपण करने के अवसर पर ही पर्याप्त और अपर्याप्तकाल युक्त चारों गतियों में सम्पूर्ण गुणस्थानों की सत्ता बता दी गई है।

शङ्का—बाकी की (जो वेद कषाय आदि मार्गणाओं का आगे विवेचन करेंगे उन) मार्गणाओं में यह विषय (पर्याप्ति अपर्याप्ति के सम्बन्ध से) क्यों नहीं कहा जाता है?

उत्तर—इसलिये नहीं कहा जाता है कि इसी कथन से सर्वत्र गतार्थ हो गया है। क्योंकि चारों गतियों को छोड़कर और कोई मार्गणायें नहीं है।

इस प्रकरण समाप्ति के कथन से धवलाकार ने यह बात सिद्ध कर दी है कि आगे की वेद कषायादि मार्गणाओं में पर्याप्तियों और अपर्याप्तियों के सम्बन्ध में गुणस्थानों का विवेचन नहीं किया है। अतएव उन वेदादि मार्गणाओं में द्रव्यशरीर का वर्णन नहीं है किन्तु भाववेद का ही वर्णन है। और भाववेद का कथन होने से उन मार्गणाओं में भावों की विवक्षा से चौदह गुणस्थान बताये गये हैं। धवलाकार के इस कथनसे और पर्याप्ति अपर्याप्ति से सम्बन्धित गुणस्थानों के विधायक सूत्रों के कथन से यह बात सिद्ध हो गई कि षट्खण्डागम सिद्धांत शास्त्र में केवल भाववेद का ही कथन नहीं है जैसा कि भाववेद-वादी विद्वान बता रहे हैं किन्तु उसमें चार मार्गणाओं एवं पर्याप्ति अपर्याप्ति के विवेचन तक द्रव्यवेद का ही मुख्य रूप से कथन है और उस प्रकरण के

समाप्त होने पर वेदादि मार्गणाओं में भाववेद की मुख्यता से ही कथन है।

वेदादि मार्गणाओं में केवल भाववेद ही क्यों लिया गया है ?

इसका भी मुख्य हेतु यह है कि वेद मार्गणा में नोकषाय रूप कर्मोदय में गुणस्थान बताये गये हैं। कषाय मार्गणा में कषायोदय जनित कर्मोदय में गुणस्थान बताये गये हैं, ज्ञान मार्गणा में मतिज्ञानादि (आवरण कर्म भेदों में) में गुणस्थान बताये गये हैं, इसी प्रकार संयम दर्शन लेश्या भव्यत्व सम्यक्त्व संज्ञित्व आहारत्व इन सभी मार्गणाओं के विवेचन में १०१ सूत्र से लेकर १७७ तक ७७ सूत्रों में और उन सूत्रों की धवला टीका में कहीं भी पर्याप्ति अपर्याप्ति, शरीर रचना, आदि का उल्लेख नहीं है। पाठक और भाववेदी विद्वान ग्रन्थ निकालकर अच्छी तरह देख लेवें यही कारण है कि वे वेदादि मार्गणाएं भावों की ही प्रतिपादक हैं द्रव्य शरीर का उनमें कोई सम्बन्ध नहीं है। इसलिये उन वेदादि मार्गणाओं में मानुषियों के नव और चौदह गुणस्थान बताये गये हैं।

इतना स्पष्ट विवेचन करने के पीछे अब हम उन वेदादि मार्गणाओं के विधायक सूत्रों और उनकी धवला टीका का उद्धरण देना व्यर्थ समझते हैं। जिन्हें कुछ भी आशङ्का हो वे ग्रन्थ खोल कर प्रत्येक सूत्र को और धवला टीका को देख लेवें।

—भावपक्षी विद्वानों के लेखों का उत्तर—

यद्यपि हमने ऊपर श्री षटखण्डागम जीवस्थान—सत्प्ररूपणा—धवलसिद्धांत के अनेक सूत्र और धवला के उद्धरण देकर यह बात निर्विवाद एवं निर्णीत रूप में सिद्ध कर दी है कि उक्त सिद्धांत शास्त्र में द्रव्यवेद का भी वर्णन है। और ९३वें सूत्र में द्रव्य स्त्री का ही कथन है अतः उस सूत्र में 'संजद' पद जोड़ने से द्रव्य स्त्री के चौदह गुणस्थान सिद्ध होंगे, तथा उसी भव से उसके मोक्ष भी सिद्ध होगी। अतः उस सूत्र में 'संजद' पद सर्वथा नहीं हो सकता है। इस विशद एवं सप्रमाण कथन से उन समस्त विद्वानों की सब प्रकार की शङ्काओं का समाधान भले प्रकार हो जाता है जो कि इस षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र को केवल भाववेद का ही निरूपक बताते हैं तथा उसे द्रव्यवेद का निरूपक सर्वथा नहीं बताते हैं उन्होंने जितने भी प्रमाण गोम्मटसार आदि के भाववेद की पुष्टि के लिये दिये हैं वे सब द्रव्यवेद विधायक प्रमाण हैं। उन प्रमाणों से हमारे कथन की ही पुष्टि होती है। और यह कभी त्रिकाल में भी नहीं हो सकता है कि षटखण्डागम के विरुद्ध गोम्मटसार का विवेचन हो। क्योंकि गोम्मटसार भी तो श्री षटखण्डागम के आधार पर ही उसका संक्षिप्त सार है। भावपक्षी विद्वान उस गोम्मटसार के भी समस्त कथनमें द्रव्यवेद का अभाव बताते हुये केवल भाववेद का प्रतिपादक उसे बताते हैं सो उनका यह कहना भी गोम्मटसार के कथन को देखते हुये प्रत्यक्ष बाधित है। अतः उनके लेखों का उत्तर हमारे विधान से सुतरां हो

जाता है। अब अलग देना व्यर्थ प्रतीत होता है। और हमारा लेख भी बहुत बढ़ जायागा। फिर भी उनके सन्तोष के लिये एवं पाठकों की जानकारी के लिये भावपत्ती विद्वानों की उन्हीं बातों का उत्तर यहां देते हैं जो खास २ हैं और विषय को स्पर्श करती हैं।

भावपक्षी विद्वानों में चार विद्वानों के लेख हमारे देखने में आये हैं, श्री० पं० पन्नालाल जी सोनी, पं० फूलचन्द जी शास्त्री, पं० जिनदास जी न्यायतीर्थ, और पं० वंशीधर जी सोलापुर। इनमें न्यायतीर्थ पं० जिनदास जी के लेख का सप्रमाण और सहेतुक उत्तर हम जैन बोधक के सम्पादक के नाते उसमें दे चुके हैं। आगे के उनके लेखों में कोई विशेष बात नहीं है। पं० वंशीधर जी के लेखों का उत्तर देना व्यर्थ है उसका हेतु हम इस लेख में पहले लिख चुके हैं, उस के सिवा उनके लेख सार शून्य, हेतु-शून्य एवं असम्बद्ध रहते हैं। अतः पहले के दो विद्वानों के लेखों की मुख्य २ बातों का संक्षिप्त उत्तर यहां दिया जाता है।

श्री० पं० पन्नालाल जी सोनी महोदय का एक लेख तो मदन-गञ्ज किशनगढ़ से निकलने वाले खण्डेलवाल जैन हितेच्छु के ता० १६ अगस्त १६४६ के अङ्क में पूरा छपा है। उस लेख का बहुभाग कलेवर तो मनुष्य गति के वर्णन, आठ अनुयोग द्वार, उदय उदीरणा सत्व भङ्ग विषय, मनुष्य के चार भेद, द्रव्य स्त्री और मानुषी (भावस्त्री) के गुणस्थानों में भेद, आदि नियमित बातों के नामोल्लेख से ही भरा हुआ है। वह एक चौबीसठाणा जैसी

चर्चा है, वह कोई शङ्का का विषय नहीं है। और हमारा उस कथन से कोई मतभेद भी नहीं है। हां, उन्होंने जो सत संख्या आदि आठ अनुयोगों का नाम लेकर मनुष्यगति के चारों भेदों में चौदह गुणस्थान बताये हैं सो यह बात उनकी षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र से कुछ भेदों तक विरुद्ध पड़ती है, क्योंकि उक्त सिद्धांत शास्त्र में प्रतिपादित आठ अनुयोगद्वार में जो सत्प्ररूपणा नाम का पहला अनुयोग द्वार है उसके अनुसार जो गति, इन्द्रिय काय और योग, इन आदि की चार मार्गणाओं में तथा उसी योग मार्गणा से सम्बन्धित पर्याप्ति अपर्याप्तियों में गुणस्थानों का समन्वय बताया गया है वह द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर की मुख्यता से बताया गया है। वहां पर सत्प्ररूपणा अनुयोग द्वार से पर्याप्त मानुषी के पांच गुणस्थान ही बताये गये हैं, चौदह नहीं बताये गये हैं, और न चौदह गुणस्थान उक्त चार मार्गणाओं में तथा पर्याप्त अवस्थामें मानुषी के सिद्ध ही हो सकते हैं जैसाकि हम अपने लेख में स्पष्ट कर चुके हैं, फिर जो सत् द्वार से जो मानुषी के चौदह गुणस्थान सोनी जी ने बिना किसी प्रमाण के अनुयोगों का नामोल्लेख करते हुये एक पंक्ति में कह डाले हैं वह उनका कथन आगम विरुद्ध पड़ता है। इसी प्रकार उन्होंने आगे चलकर ६३वें सूत्र के सञ्जद पद रहित और सञ्जद पद सहित, ये दो विकल्प उठाकर मानुषी के चौदह गुणस्थान बताते हुये उस सूत्रमें सञ्जद पद की पुष्टि की है वह भी सिद्धांत शास्त्र से विरुद्ध है। यह बात हमने अपने पूर्व लेख में बहुत स्पष्ट कर दी है कि सूत्र-

सरणी निर्दिष्ट पर्याप्ति विधान से ६३वें सूत्र में संयत पद सिद्ध नहीं हो सकता है। क्योंकि वह द्रव्यस्त्री का ही प्रतिपादक उक्त क्रम विधान से सिद्ध होता है।

६२ और ६३ सूत्रों में आये हुये पर्याप्त अपर्याप्त पदों की व्याख्या करते हुये सोनी जी स्वयं लिखते हैं—"इसलिये इन दो गुणस्थानों में मनुष्यणियां पर्याप्तक और अपर्याप्तक दोनों तरह की कही गई हैं। यह ख्याल रहे कि गर्भ में आने पर अन्तर्मुहूर्त के पश्चात शरीर पर्याप्ति के पूर्ण हो जाने पर पर्याप्तक तो जीव हो जाता है परन्तु उसका शरीर सात महीने में आठ महीने में और नौ महीने में पूर्ण होता है।"

इसके आगे उन्होंने गर्भस्राव, पात और जन्मका स्वरूप निरूपण किया है। इसके आगे लिखा है कि "तीनों अवस्थाओं में वह जीव चाहे मनुष्य हो चाहे मनुष्यणी हो पर्याप्तक होता है।" इस कथन से यह बात उन्हीं के द्वारा सिद्ध हो जाती है कि ६२ और ६३ सूत्रों में जो पर्याप्तक और अपर्याप्तक पद मानुषियों के साथ लगे हुये हैं वे उन मानुषियों को द्रव्यस्त्री सिद्ध करते हैं, न कि भावस्त्री। क्योंकि गर्भ में आना और अन्तर्मुहूर्त में शरीर पर्याप्ति पूर्ण होना आदि सभी बातें मानुषियोंके द्रव्य शरीर की ही विधायक हैं।

आगे सोनी जी ने इसी सम्बन्ध में यह बात कही है कि सूत्र में संयत पद नहीं माना जाता है तो स्त्री के पांच गुणस्थान ही सिद्ध होंगे। परन्तु मानुषी के चौदह गुणस्थान भी बताये हैं वे

संयत पद सूत्र में देने से सिद्ध हो जाते हैं।

इसके लिये हमारा यह समाधान है कि इस सूत्र में पर्याप्तक पद के निर्देश से मानुषी से द्रव्य स्त्री का ही ग्रहण है। अन्यथा आपकी व्याख्या—'गर्भ और अन्तर्मुहूर्त में शरीर की पूर्णता की' कैसे बनेगी ? और द्रव्य शरीर के कारण पांच गुणस्थान ही स्त्री के इस सूत्र द्वारा मानना ठीक है। संयत पद देना यहां पर द्रव्य स्त्री का मोक्ष साधक होगा। परन्तु आगे वेदादि मार्गणाओं में जहां योग और पर्याप्तियों का सम्बन्ध नहीं है तथा केवल औदयिक भावों का ही गुणस्थानों के साथ समन्वय किया गया है वहां पर मानुषी के (भावस्त्री) के चौदह गुणस्थान बताये ही गये हैं उनमें कोई किसी को विरोध नहीं है। और वहां पर उन सूत्रों में ही अनिवृत्ति करण एवं अयोग केवली पद पड़े हुये हैं, इसलिये यहां ६३ सूत्रमें 'संयत पद जोड़े बिना भाव मानुषी के चौदह गुणस्थान कैसे सिद्ध होंगे?' ऐसी आशङ्का करना भी व्यर्थ ठहरती है। यहां यदि उन सूत्रों में अयोग केवली आदि पद नहीं होते तो फिर कहां से अनुवृत्ति आवेगी ऐसी शङ्का भी होती। यदि ६३वें सूत्र में संयत पद दिया जायगा तो यह भारी दोष अवश्य आवेगा कि द्रव्यस्त्री के गुणस्थानों का षटखण्डागम में कोई सूत्र नहीं रहेगा। जो कि सिद्धांत शास्त्र के अधूरेपन का सूचक होगा। और अंगैक-देशज्ञाता भूतबलि पुष्पदन्त की कमी का भी द्योतक होगा फिर पर्याप्ति अपर्याप्ति पदों का निवेश ही संयतपद का उस सूत्र में सर्वथा बाधक है। अतः पहला पाठ ही

ठीक है। संयत पद विशिष्ट पाठ उस सूत्र में सिद्ध नहीं होता है।

आगे चलकर सोनीजी ने द्रव्यानुगम का यह प्रमाण दिया है

मणुसिणीसु सासणसम्माइट्ठिप्पहुडि जाव अजोग केवलित्ति दव्वपमाणेण केवडिया—संखेज्जा। द्रव्य प्रमाणानुगम।

इस प्रमाण से उन्होंने मानुषियों के अयोग केवली तक १४ गुणस्थान होने का प्रमाण दिया है। सो ठीक है, इसमें हमें कोई विरोध नहीं है, कारण यहां पर्याप्तियों का सम्बन्ध और प्रकरण नहीं है अतः भावस्त्री की अपेक्षा का कथन है। सूत्रमें 'अजोग—केवलित्ति' पाठ है अतः बिना पूर्व की अनुवृत्ति के सूत्र से ही भावस्त्री के चौदह गुणस्थान बताये गये हैं।

इस प्रकार उन्होंने क्षेत्रानुगम का–'मणुसगदीए मणुसमणुस पज्जत्तमणुसिणीसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगकेवली केवडि-खेत्ते ? लोगस्स असंखेज्जदिभागे।' यह प्रमाण भी दिया है उससे भी मानुषी के चौदह गुणस्थान बताये हैं, सो यहां पर भी हमारा वही उत्तर है। सूत्रकार ने भावस्त्री की अपेक्षा से यहां भी अयोगी पयत गुणस्थान क्षेत्र की अपेक्षा बताये हैं। इसमें हमें क्या आपत्ति हो सकती है। जबकि शरीर रचना की निष्पत्ति रहित भाव मानुषी का यह कथन है।

सोनी जी के इस द्रव्य प्रमाणानुगम प्रमाण के प्रसङ्ग में उन्हें इतना और बता देना चाहते हैं कि उस द्रव्य प्रमाणानुगम द्वार में भी षट्खण्डागम सिद्धांत शास्त्र में द्रव्य मनुष्य द्रव्यस्त्रियां आदि की संख्या बताई है प्रमाण के लिये एक दो सूत्रों का यहां

उद्धरण देना पर्याप्त है।

मणुस्सपज्जत्तेसु मिच्छाइट्ठि दव्वपमाणेण केवडिया, कोडा—कोडाकोडीए उवरि कोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्णंवग्गाण सत्तण्णं वग्गाणं हेट्ठदो।

(सूत्र ४५ पृष्ठ १२७)

षटखण्डागम जीवस्थान द्रव्यप्रमाणानुगम

इस सूत्र द्वारा पर्याप्त मनुष्यों में से मिथ्यादृष्टि मनुष्यों की संख्या द्रव्य प्रमाण से बताई गई है। इसी सूत्र की व्याख्या में धवलाकार ने पर्याप्त मनुष्यों की संख्या वही बताई है जो गो-म्मटसार जीवकांड में उनतीस अङ्क प्रमाण द्रव्य मनुष्यों की बताई गई है। उसी में से ऊपर के गुणस्थान वालों की संख्या घटाकर मिथ्यादृष्टियों की संख्या बताई गई है। मनुष्य पर्याप्त और संख्या का उल्लेख सूत्र में दिया गया है। गोम्मटसार जीव-कांड की गाथा १५६ और १५७ द्वारा—

सेढीसूईअंगुल आदिम तदियपदभाजिदे गूणा।
सामण्ण मणुसरासी पंचमकदिघणसमा पुण्णा॥

(इस गाथा में) पर्याप्त मनुष्यों की संख्या बताई गई है। यही प्रमाण धवलाकार ने ऊपर के सूत्र की व्याख्या में इस रूप से दिया है—

वेरूवस्स पंचमवग्गेण छट्ठमवग्गं गुणिदे मणुस्स पज्जत्तरासी होदि आदि। (पृष्ठ १२७ धवला)

इसके अनुसार धवलाकार ने पृष्ठ १२६ में— ७९२२८१६२५

१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ यह २९ अङ्क प्रमाण पर्याप्त मनुष्यों की संख्या बताई है। और यही राशि गोम्मटसार की उक्त १५७ गाथा में बताई गई है। दोनों का पाठक मिलान कर लेवें। यह संख्या द्रव्य मनुष्यों की है।

इस प्रकार गोम्मटसार और षटखण्डागम दोनों ही द्रव्य मनुष्यों की संख्या बताते हैं। द्रव्यस्त्रियों की संख्या भी इसीप्रकार दोनों में समान बताई गई है उसे भी देखिये—

पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं।

सामण्णा पुण्णूणा मणुव अपज्जत्तगा होंति॥

अर्थ—पर्याप्त मनुष्यों का जितना प्रमाण है उसमें तीन चौथाई ($\frac{3}{4}$) द्रव्यस्त्रियों का प्रमाण है। इस गाथा में जो मानुषी पद है वह द्रव्यस्त्री का ही वाचक है। इस गाथा की टीका में स्पष्ट लिखा हुआ है यथा—

पर्याप्तमनुष्यराशेः त्रिचतुर्थभागो मानुषीणां द्रव्यस्त्रीणां परिमाणं भवति।

गो० जी० टीका पृष्ठ ३८४

इस टीका में मानुषीणां पद के आगे द्रव्यस्त्रीणां पद संस्कृत टीकाकार ने स्पष्ट किया है। उसका हिन्दी अर्थ पण्डित प्रवर टोडरमल जी ने इस प्रकार किया है—

पर्याप्त मनुष्यनि का प्रमाण कह्या ताका च्यारि भाग कीजिये तामें तीन भाग प्रमाण मनुष्यणी द्रव्यस्त्री जाननी।

(गो० जी० टीका पृष्ठ ३८५)

जो द्रव्यस्त्रियों का प्रमाण ऊपर गोम्मटसार द्वारा बताया गया है वही प्रमाण द्रव्यस्त्रियों का षटखण्डागम के द्रव्य प्रमाणानुगम में बताया गया है देखिये—

मणुसिणीसु मिच्छाइट्ठि दव्वपमाणेण केवडिया ? कोडा-कोडाकोडीए उवरि कोडाकोडाकोडीए हेट्ठदो छण्हं वग्गाणमुवरि सतण्हं वग्गाण हेट्ठदो ।

(सूत्र ४८ पृष्ठ १३०)

षटखण्डागम द्रव्यानुगम

एत्तस्स सुत्तस्स वक्खाणं मणुसपज्जत्त सुत्तवक्खाणेण तुल्लं ।

इसके आगे जो मानुषियों की सख्या धवलाकार ने सूत्र निर्दिष्ट कोडाकोडी आदि पदों के अनुसार बताई है वह वही है जो गोम्मटसार में द्रव्यस्त्रियों की बताई गई है । इसी प्रकार सव्वट्ठ-सिद्धिविमाणवासिदेवा दव्वपमाणेण केवडिया संखेज्जा ।

(सूत्र ७३ पृष्ठ १४३ धवल)

इस सूत्र में सर्वार्थ सिद्धि के देवों का संख्या बताई गई है । वह द्रव्य शरीरी देवों की है । इसी सूत्र के नीचे व्याख्या में धवलाकार लिखते हैं—

मणुसिणी रासीदो तिउणमेत्ता हवंति ।

इसका अर्थ है कि सर्वार्थसिद्धि के देव मनुष्यिणियों के प्रमाण से तिगुने हैं यहांपर मानुषी द्रव्यस्त्री का वाचक है । गोम्मटसारमें-

सगसगगुणपडिवण्णे सगसगरासीसु अवणिदे वामा ।

(गाथा ४१ पृष्ठ १०६२)

इस गाथा की टीका में संस्कृत टीका के आधार पर—पं० टोडरमल जी लिखते हैं कि—

बहुरि सर्वार्थ सिद्धि विखें अहमिन्द्र सर्व असंयत हो हैं ते द्रव्यस्त्री मनुषिणी तिन ते तिगुणा वा कोई आचार्य के मत कर सात गुणे हैं। षटखण्डागम और गोम्मटसार दोनों में द्रव्य कथन है और एक रूप है।

—गोम्मटसार भी द्रव्यवेद का विधायक है—

इसी प्रकार गोम्मटसार में गति आदि प्रत्येक मार्गणा के कथन के अंत में जो उस मार्गणा वाले जीवों की संख्या बताई है वह द्रव्यवेद अथवा जीवों के द्रव्य शरीर की अपेक्षा से ही बताई है। जिन्हें इस हमारे कथन में सन्देह हो वे गोम्मटसार जीवकांड निकालकर देख लेवें। लेख बढ़ जाने के भय से यहां प्रमाण नहीं दिये जाते हैं।

इसी प्रकार षटखण्डागम के द्रव्य प्रमाणानुगम में द्रव्यजीवों की संख्या बताई है। भाववेद वादी विद्वान अपने लेखों में एक मत होकर यह बात कह रहे हैं कि षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र और गोम्मटसार दोनोंमें द्रव्यवेद का कथन नहीं है भाववेद का ही कथन उन दोनों में है। परन्तु यह बात प्रत्यक्ष बाधित है। हम ऊपर स्पष्ट कर चुके हैं, और भी देखिये—

इंदियाणुवादेण एइंदिया वादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्व पमाणेण केवडिया अणंता।

(सूत्र ७४ पृ० १५३)

धवल द्रव्य प्रमाणानुगम

तथा च—

बेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिया तस्सेव पज्जत्ता अपज्जत्ता दव्व—पमाणेण केवडिगा असंखेज्जा।

(सूत्र ७७ पृष्ठ १५५)

धवल द्रव्य प्रमाणानुगम

अर्थ दोनों सूत्रों का सुगम है।

सूत्र की व्याख्या में धवलाकार लिखते हैं—

एत्थ अपज्जत्तवयणेण अपज्जत्तणाम कम्मोदयसहिद जीवा—घेतव्वा। अण्णहा पज्जत्तणाम कम्मोदय सहिदणिव्वत्ति अपज्जत्ताणं वि अपज्जत्त वयणेण गहणप्पसंगादो। एवं पज्जत्ता इतिवुत्ते पज्ज-त्तणाम कम्मोदय सहिद जीवा घेत्तव्वा। अण्णहा पज्जत्तणाम कम्मोदय सहिद णिव्वत्ति अपज्जत्ताणं गहणाणुववत्तादो।

विति चउरिंदियेत्ति वुत्ते बीइंदिय तीइंदिय चउरिंदिय जादि-णाम कम्मोदय सहिदजीवाणं गहणं।

(पृष्ठ १५६ धवला)

अर्थ—यहां पर सूत्र ७७ में आये हुये अपर्याप्त वचन से अपर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जीवों को ग्रहण करना चाहिये अन्यथा पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त निर्वृत्यपर्याप्तक जीवों का भी अपर्याप्त इस वचन से ग्रहण प्राप्त हो जायगा। इसीप्रकार पर्याप्त ऐसा कहने से पर्याप्त नामकर्म के उदय से युक्त जीवों का ग्रहण करना चाहिये अन्यथा पर्याप्तनामकर्मके उदयसे युक्त निर्वृत्य—

पर्याप्तक जीवों का ग्रहण नहीं होगा।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय ऐसे जो सूत्र में पद हैं उनसे द्वीन्द्रियजाति, त्रीन्द्रियजाति और चतुरिन्द्रियजाति नामकर्म के उदय से युक्त जीवों का ग्रहण करना चाहिये।

यहां पर जब सर्वत्र नामकर्म के उदय से रचे गये द्रव्य शरीर और जाति नामकर्म के उदय से रची गई द्रव्येन्द्रियों का जीवों में विधान किया है तब इतना स्पष्ट विवेचन होने पर भी 'षटखण्डागम में केवल भाववेद का ही कथन है द्रव्यवेद का कथन ग्रन्थांतरों से देखो' ऐसा जो भावपक्षी विद्वान कहते हैं वह क्या इस षटखण्डागम के ही कथन से सर्वथा विपरीत नहीं ठहरता है ? अवश्य ठहरता है। यहां पर तो भाववेद का कोई विकल्प ही खड़ा नहीं होता है। केवल द्रव्यशरीरी जीवों की संख्या द्रव्यप्रमाणानुगम द्वार से बताई गई है। सोनी जी प्रभृति विद्वान विचार करें। सोनी जी ने द्रव्यप्रमाणानुगम का प्रमाण अपने लेख में दिया है इसीलिये प्रसङ्गवश हमें उक्त प्रकरण में इतना खुलासा और भी करना पड़ा।

सभी अनुयोग द्वारों में द्रव्यवेद भी कहा गया है।

जिस प्रकार ऊपर सत्प्ररूपणा और द्रव्यप्रमाणानुगम इन दो अनुयोग द्वार में द्रव्यवेद का स्फुट कथन है। उसी प्रकार अन्य सभी अनुयोग द्वारों में भी द्रव्यवेद का वर्णन है। उनमें से केवल थोड़े से उद्धरण हम यहां देते हैं—

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीये णेरइएसु मिच्छा—

इट्ठिप्पहुडि जाव असंजद सम्माइट्ठित्ति केवडि खेत्ते लोगस्स असंखज्जदि भागे ।

(सूत्र ५ पृष्ठ २८ क्षेत्रानुगम)

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता केवडि खेत्ते, सव्वलोगे ।

(सूत्र १ पृ० ४१ क्षेत्रप्रमाणानुगम)

कायाणुवादेण पुढविकाइया आउकायिया, तेउकाइया, वाउ-कायिया बादरपुढविकाइया आदि (यह सूत्र बहुत लम्बा है)

(सूत्र २२ पृष्ठ ४४ क्षेत्रानुगम)

भवणवासिय वाण वेंतर जादिसियदेवेसु मिच्छाइट्ठि सासणसम्मादिट्ठीहि केवडियं खेत्तं पोसिदं । लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।

(सूत्र ४६ पृष्ठ ११४ स्पर्शनानुगम)

वीइंदिय तीइंदिय चउरिंदिय तस्सेव पज्जत्त अपज्जत्तएहि केवडिय-खेत्तं फोसिदं लोगस्स असंखेज्जदिभागो ।

(सूत्र ५८ पृष्ठ १२१ स्पर्शानुगम द्वार)

मणुस्स अपज्जत्ता केवचिरं कालादो होंति णाणजीवं पडुच्च, जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।

(सूत्र ८३ पृष्ठ १६० कालानुगम द्वार)

सव्वट्ठसिद्धि विमाणवासियदेवेसु असंजदसम्माइट्ठी केवचिरं कालादो होंति णाणाजीवं पडुच्च सव्वदा ।

(सूत्र १०५ पृष्ठ१६४ कालानुगम द्वारा)

एकजीवं पडुच्च जहण्णेण उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि।

(१०६ सूत्र पृष्ठ १६४ कालानुगम द्वार)

कायाणुवादेण पुढविकाइओ णाम कध भवदि ?

(सूत्र १८)

पुढविकाइयणामाए उदएण

(सूत्र १६ पृष्ठ ३५ स्वामित्वानुगम)

आउकाईओ णाम कधं भवदि ? सूत्र २०

आउकाइय णामाए उदएण सूत्र २१

तेउकाईओ णाम कधं भवदि ? सूत्र २२

तेउकाइय णामाए उदएण सूत्र २३

वाउकाईयो णाम कधं भवदि ? सूत्र २४

वाउकाइय णामाए उदएण सूत्र २५

(पृष्ठ ३६ स्वामित्वानुगम द्वार)

आणद पाणद आरण अच्चुद कप्पवासिय देवाणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि ? सूत्र २४

जहण्णेण मासपुधत्तं

(२५ सूत्र पृ० ६७ अन्तरानुगम द्वार)

वणप्फदिकाइय णिगोदजीव बादरसुहम पज्जत्त अपज्जत्ताण मन्तरं केवचिरं कालादो होदि ?

(सूत्र ५० पृष्ठ १०१ अन्तरानुगम द्वार)

जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।

(सूत्र ५१ पृष्ठ १०२ अन्तरानुगम द्वार)

इंदियाणुवादेण एइंदिया बादरा सुहुमा पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।

(सूत्र ७ पृष्ठ १२० भङ्ग विचयानुगम)

वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय पंचिंदिय पज्जत्ता अपज्जत्ता णियमा अत्थि ।

सूत्र ८ पृ० १२० भङ्ग विचयानुगम द्वार)

सव्वत्थोवा मणुस्सा	सूत्र २
णेरइया असंखेज्ज गुणा	सूत्र ३
देवा असंखेज्ज गुणा	सूत्र ४
सव्वत्थोवा मणुस्सिणीओ	सूत्र ८
मणुस्सा असंखेज्ज गुणा	सूत्र ९
इंदियाणुवादेण सव्वत्थोवा पंचिंदिया	सूत्र १६
चउरिंदिया विसेसाहिया	सूत्र १७
तीइंदिया विसेसाहिया	सूत्र १८
बीइन्दिया विसेसाहिया	सूत्र १९ पृष्ठ २६२

(अल्पबहुत्वानुगम द्वार)

णाणावरणीयं	सूत्र ५
दंसणावरणीयं	सूत्र ६
वेदणीयं	सूत्र ७
मोहणीयं	सूत्र ८
आउअं	सूत्र ९
णामं	सूत्र १०

गोदं सूत्र ११

अंतरायं चेदि सूत्र १२

णाणावरणीयस्स कम्मस्स पंचपयडीओ सूत्र १३

(पृ० ५-६ जीवस्थान चूलिका)

मणुसा मणुस पज्जत्ता मिच्छाइट्ठी संखेज्जवासा उसा

मणुसा मणुसेहि कालगद समाणा कदि गदीओ गच्छंति ?

(सूत्र १४१ चूलिका)

चत्तारि गदीओ गच्छंति णिरयगई तिरिक्खगई मणुसगई देवगई चेदि।

(सूत्र १४२ पृष्ठ २३४ चूलिका)

णिरयेसु गच्छंता सव्व णिरयेसु गच्छंति। १४३ सूत्र

तिरिक्खेसु गच्छंता सव्व तिरिक्खेसु गच्छंति। १४४ सूत्र

मणुसेसु गच्छंता सव्व मणुस्सेसु गच्छंति। १४५ सूत्र

देवेसु गच्छंता भवणवासिप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाण—वासिय देवेसु गच्छंति।

(१४६ सूत्र पृष्ठ २३५ चूलिका)

इन समस्त सूत्रों को धवला टीका में और भी स्पष्ट किया गया है। उन सब उद्धरणों का उल्लेख करने से लेख बहुत बढ़ जायगा। संक्षेप से भिन्न २ अनुयोग द्वारों के सूत्र यहां दिये गये हैं। इन सूत्रों से द्रव्यवेद एवं द्रव्य शरीर का स्पष्ट विवेचन पाया जाता है। भाववेदी विद्वान सभी अनुयोग द्वारों को भाववेद निरूपक ही बताते हैं। आश्चर्य है।

सोनी जी ने जो राजवार्तिक का प्रमाण दिया है वह भी उनके अभीष्ट को सिद्ध नहीं कर सकता है, कारण स्त्रियों के साथ पर्याप्त विशेषण जोड़कर वार्तिक में चौदह गुणस्थान बताये जाते तब तो उनका कहना अवश्य विचारणीय होता परन्तु इस एक ही वाक्य में 'भावलिंगापेक्षया द्रव्यलिंगापेक्षेण तु पञ्चाद्यानि, ये दो पद पड़े हुये हैं जो विषय को स्पष्ट करते हुये पर्याप्त विशेषण को द्रव्यपुरुष के साथ ही जोड़ने में समर्थ हैं। राजवार्तिककार ने तो एक ही वाक्य में भाव और द्रव्य दोनों का कथन इतना स्पष्ट कर दिया है कि उसमें किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं हो सकता है। उन्होंने जीव को पर्याप्त अवस्था के स्त्री भाववेद में चौदह गुणस्थान और और द्रव्यलिंग द्रव्यस्त्री की अपेक्षा से आदि के पांच गुणस्थान स्पष्ट रूप से बता दिये हैं। फिर भावपक्षी विद्वान किस अव्यक्त एवं अन्तर्निहित बात का लक्ष्य कर इस राजवार्तिक के प्रमाण को भाववेद की सिद्धि में उपस्थित करते हैं सो समझ में नहीं आता? श्री राजवार्तिककार ने और भी द्रव्यस्त्रीवेद की पुष्टि आगे के वाक्य द्वारा स्पष्ट रूप से करदी है देखिये—

अपर्याप्तिकासु द्वे आद्ये, सम्यक्त्वेन सह स्त्रीजननाभावात्।

इसका यह अर्थ है कि मानुषी की अपर्याप्त अवस्था में आदि के दो गुणस्थान ही होते हैं क्योंकि सम्यग्दर्शन के साथ स्त्री पर्याय में जीव पैदा नहीं होता हैं। यहां पर स्त्री पर्याय में जन्म पैदा होने का निषेध किया गया है तब मानुषी शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप से द्रव्यस्त्री ही राजवार्तिककार ने अपर्याप्त अवस्था में बत

दिया है। अतः भावपक्ष की सिद्धि के लिये राजवार्तिक का कथन अनुपयोगी है।

सोनी जी ने राजवार्तिक की पंक्ति का अर्थ अपने पक्ष की सिद्धि के लिये, मनः कल्पित भी किया है जैसा कि वे लिखते हैं–
"यहां भाष्य में पर्याप्त भाव मानुषियों में चौदह गुणस्थानों को सत्ता कही गई है और अपर्याप्त भाव मानुषियों में दो गुणस्थानों की।"

यहां पर 'अपर्याप्त भाव मानुषियों में दो गुणस्थानों की' इस में 'भाव' पद उन्हों ने अधिक जोड़ दिया है जो भाष्य में नहीं है और विपरीत अर्थ का साधक होता है। राजवार्तिक के वाक्य में 'अपर्याप्तिकासु' केवल इतना ही पद है उसमें भाव पद नहीं है। किन्तु 'स्त्री जननाभावात्' इस वाक्य से राजवार्तिककारने द्रव्यवेद वाली स्त्री का ही ग्रहण किया है। भाववेद स्त्री का जन्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु सोनी जी ने अर्थ में द्रव्यवेद स्त्री को तो छोड़ ही दिया है और भाववेद स्त्री का उल्लेख वाक्य में नहीं होनेपर भी उसका उल्लेख अपने मन से किया है। इसी प्रकार भाष्य में केवल 'अपर्याप्तिकासु' पद है परन्तु सोनी जी ने उसके अर्थ में दोनों ही प्रकार की अपर्याप्त मानुषियों में आदि के दो गुणस्थान होते हैं। ऐसा 'दोनों ही प्रकार की' पद मनः कल्पित जोड़ दिया है। जो उचित नहीं है।

सूत्र ६३वें में जो उन्होंने 'अस्मादेवार्षात् द्रव्यस्त्रीणां निर्वृत्तिः सिद्धयेत् कहकर संजद पदकी आशङ्का उठाई है उसका समाधान

हम इसी लेख में पहले कर चुके हैं। भावानुगम द्वार का उल्लेख कर जो मानुषी के साथ संजद पद दिया गया है वह भावस्त्री का बोधक है परन्तु ९२वें ९३वें सूत्रों में औदारिक और औदारिक मिश्र काययोग तथा तदन्तर्गत पर्याप्ति अपर्याप्ति का ग्रहण है, इन्हीं के सम्बन्ध से उन दोनों सूत्रों का कथन है इसलिये वहां पर द्रव्य स्त्री वेद का ही ग्रहण होने से सञ्जद पद का ग्रहण नहीं हो सकता है।

आगे सोनी जी ने एक हास्योत्पादक आशङ्का उठाई है वे लिखते हैं--

"नं० ९३ की मनुष्यिणियां केवल द्रव्यस्त्रियां हैं थोड़ी देर के लिये ऐसा भी मान लें परन्तु जिन सूत्रों में मानुषिणियों के चौदह गुणस्थानों में द्रव्य प्रमाण, चौदह गुणस्थानों में क्षेत्र, स्पर्श, काल, अल्पबहुत्व कहे गये हैं वे मनुष्यिणियां द्रव्यस्त्रियां हैं या नहीं, यदि हैं तो उनके भी मुक्ति होगी। यदि वे द्रव्यस्त्रियां नहीं हैं तो ९३वें सूत्र की मनुषिणियां द्रव्यस्त्रियां ही हैं यह कैसे? न्याय तो सर्वत्र एक सा होना चाहिये।"

यह एक विचित्र शङ्का और तर्कणा है, उत्तर में हम कहते हैं कि—असंज्ञी तिर्यंच के मन नहीं होता है परन्तु संज्ञी तिर्यंच के मन होता है। ऐसा क्यों? अथवा भव्य मनुष्य तो मोक्ष जा सकता है अभव्य नहीं जा सकता है ऐसा क्यों? जबकि तिर्यंच पद संज्ञी असंज्ञी दोनों जगह है। और मनुष्य पद भी भव्य अभव्य दोनों जगह है फिर इतना बड़ा भेद क्यों? न्याय तो

दोनों जगह समान होना चाहिये, सोनी जी हमारी इस तर्कणा एवं आशङ्का का जो उत्तर देवें वही उन्हें अपने समाधान केलिये समझना चाहिये। कसूर एक सा होने पर भी व्यक्तियों की छोटी बड़ी अवस्था और उनके इरादे (मंशा) में भेद होने से भिन्न २ धाराओं के आधार पर कम ज्यादा सजा दी जाती है। एक सङ्गीन फौजदारी मुकद्दमें में छह माह की सजा और २००) रु० जुर्माना करने का एक साथ सेकण्ड क्लास का अधिकार होने पर भी हमने अपनी मजिस्ट्रेटी में दो अपराधियों को कम ज्यादा सजा स्वयं दी है और ऊपर की न्यायालय से रद्द किये जाने पर भी हमारा दिया हुआ निर्णय (फैसला) हाई कोर्ट से बहाल (मान्य) रहा। अतः पात्रतानुसार ही न्याय होता है। यदि सर्वत्र एक सा न्याय मान लिया जाय तब तो 'अन्धेर नगरी चौपट राजा, टका सेर भाजी टका सेर खाजा।' वाला हाल हो जायगा। इसलिये सोनी जी की बात का यही समाधान है कि जहां जैसा पात्र और विधान है वहां वैसा ही ग्रहण करना चाहिये। ९२वें-९३वें सूत्रों में अपर्याप्त पर्याप्त के सम्बन्ध से स्त्रियों के द्रव्य शरीर का ही ग्रहण होता है। अन्यत्र जहां स्त्रियों के चौदह गुणस्थान बताये गये हैं वहां केवल भावस्त्रियों का ग्रहण होता है। वहां स्त्रियों के साथ पर्याप्ति अपर्याप्ति का सम्बन्ध नहीं है। बस इसीलिये सर्वत्र हेतुवाद सहित यथोचित न्यायका पूर्ण विधान है।

आगे सोनी जी ने बिना किसी प्रमाण के कहा है कि षट—खण्डागम में भाववेदों की प्रधानता है द्रव्यवेद तो आगमांतरों के

बल से जाना जाता है। इन सब बातों का परिपूर्ण एवं सप्रमाण समाधान हम इसी ट्रेक्ट में पहले अच्छी तरह कर चुके हैं। यहां पिष्ट—पेषण करना व्यर्थ है।

आगे उन्होंने 'आदि इन्द्रियेषु पुनः नय वेदानां चेतादि चारो-अस्ति' इस प्रमाण से बताया है कि द्रव्यस्त्रियों और नपुंसकवेद वालों के वस्त्रादि का त्याग नहीं है, उसके बिना संयम होता नहीं है अतः अर्थापत्ति से यह बात आगमांतरों से जानी जाती है कि छट्टे आदि संयत स्थानों में एक द्रव्य पुरुषवेद ही है। परन्तु सोनी जी को यह बात समझ लेनी चाहिये। कि यहां पर अर्थापत्ति और आगमांतर से जानने की कोई आवश्यकता नहीं है। इसी आगम में द्रव्यस्त्रियों के संयतासंयत तक ही गुणस्थान बताये गये हैं उनके संयत गुणस्थान नहीं हैं इसीलिये तो वस्त्र त्याग का अभाव हेतु दिया गया है। इस स्फुट कथन में आगमांतर से जानने की क्या बात है? हां ९३वें सूत्र में संयद पद जोड़ देने से ही ग्रन्थ विपर्यास और आगमांतर से जानने आदि की अनेक मिथ्याझंझटें और वस्तु वैपरीत्य पैदा हुये बिना नहीं रहेगा। तथा ९३वें सूत्र में संयद पद की सत्ता स्वीकार कर लेने पर निकट भविष्य में ऐसा साहित्य प्रसार होगा जो श्वेतांबरों दिगम्बर के मौलिक भेदों को मेटकर सिद्धांत-विघात किये बिना नहीं रहेगा इस बात को सोनी जी प्रभृति विद्वानों को ध्यान में लाना चाहिये।

बस १६ अगस्त १९४६ के खण्डेलवाल जैन हितेच्छु में छपे

हुये सोनी जी के लेख का उत्तर ऊपर दिया जा चुका है। अब उनके उक्त पत्र के १६ सितम्बर और १ अक्टूबर के लेखों का संक्षिप्त उत्तर यहां दिया जाता है जो कि हमको ध्यान दिलाकर इन्होंने लिखे हैं।

सोनी जी ने लिखा है कि—"गत्यंतर का या मनुष्यगति का ही कोई भी सम्यग्दृष्टि जीव मरकर भावस्त्री द्रव्य मनुष्यों में उत्पन्न होता हो तभी उसके अपर्याप्त अवस्था में चौथा असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान हो सकता है अन्यथा नहीं।"

इसके लिये वे नीचे प्रमाण देते हैं—जेसिं भावो इत्थि वेदो-दव्वं पुण पुरिस वेदो तेवि जीवा संजमं पडिवज्जंति दव्वित्थिवेदा सञ्जमं ण पडिवज्जंति सचेलत्तादो। भावित्थि वेदाणं दव्वेण पुंवेदाणं पि संजदाणं णाहाररिद्धि समुप्पजदि दव्वभावेण पुरिस-वेदाणमेव समुपज्जदि। धवल।

इन पंक्तियोंका अर्थ सोनी जी ने किया है,। यहां हम तो यह बात उनसे पूछते हैं कि ऊपर तो आप अपर्याप्त अवस्था में भाव स्त्री और द्रव्य पुरुष में सम्यग्दृष्टि के उत्पन्न होने का निषेध करते हैं और उसके प्रमाण में जो धवल की पंक्ति आपने दी है उससे आहारकऋद्धि का निषेध होता है, न कि भावस्त्री द्रव्यपुरुष में सम्यग्दृष्टिके मरकर पैदा होनेका। बात दूसरी और प्रमाण दूसरा यह तो अनुचित एवं अग्राह्य है। भाव स्त्रीवेद के उदय में द्रव्य पुरुष के संयमी अवस्था में छठे गुणस्थान में आहारकऋद्धि नहीं होती है यह तो इसलिये ठीक है कि छठे गुणस्थान में स्थूल

प्रमाद रहता है वहां भावस्त्री वेद के उदय में मुनियों के भावों में कुछ मलिनता आ जाती है अतः आहारकऋद्धि नहीं पैदा होती परन्तु जब द्रव्य मनुष्य के अपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान होता है उस अवस्था में भावस्त्री वेद का उदय उसमें क्या बाधा दे सकता है ? जबकि भावस्त्री वेद के उदय में ९वां गुणस्थान तक हो जाता है। यदि भावस्त्री वेदी द्रव्य मनुष्य की अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि के उत्पन्न होने का कहीं पर निषेध हो तो कृपा कर बताइये, ऊपर जो प्रमाण आपने दिया है उससे तो संयम और आहारकऋद्धि का ही निषेध सिद्ध होता है।

आगे सोनी जी ने मनुष्यणी भी भावस्त्री होती है इसके सिद्ध करने के लिये धवल का यह प्रमाण दिया है—

मणुसिणीसु असञ्जदसम्माइट्ठीणं उववादो णत्थि पमत्ते तेजा-हारसमुग्घादा णत्थि।

धवल की इन पंक्तियों का अर्थ उन्हों ने यह किया है कि—भावमानुषी के प्रमत्त गुणस्थान में तैजः समुद्घात और आहारक समुद्घात का निषेध किया गया है उन्हीं में असंयत सम्यग्दृष्टियों के उपपाद समुद्घात का निषेध किया गया है यदि सोनी जी के अर्थानुसार यही माना जाय कि द्रव्य पुरुष भावस्त्री की अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि पैदा नहीं होता है, तो फलतः यह अर्थ भी सिद्ध होगा कि द्रव्यस्त्री भावपुरुष के तो अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि पैदा होता है। जब सर्वत्र भाववेद की मुख्यता से ही कथन है तो द्रव्यस्त्री की अपर्याप्त अवस्था में षटखण्डागम से

यह अर्थ ग्रन्थके सङ्गत नहीं है किन्तु आहार समुद्घातका सम्बन्ध जोड़कर आनुमानिक (अंदाजिया) है। वास्तविक अर्थ ऊपर की धवला का यही टीक है कि द्रव्य मानुषियों में असंयत सम्यग्-दृष्टियों का उपपाद नहीं होता है। और भावमानुषियों में तेज समुद्घात तथा आहारक समुद्घात प्रमत्त गुणस्थानमें नहीं होता है। ऊपर का वाक्य द्रव्यस्त्रियां के लिये और नीचे का वाक्य भावस्त्रियों के लिये है। ऐसा अर्थ ही ठीक है इसके दो हेतु हैं एक तो यह कि वाक्य में उववादो णत्थि यह पद है, इसका अर्थ जन्म है। जन्म द्रव्यवेद में ही सम्भव है, भाववेद में सर्वथा असम्भव है। यह बात सर्वथा हेतु संगत और ग्रन्थ सङ्गत नहीं है कि मानुषी में तो उपपाद का निषेध किया जाय और बिना किसी पद और वाक्य के उसका अर्थ द्रव्यमनुष्य में किया जाय। अतः ऊपर धवला का धवल वाक्य द्रव्यस्त्री के लिये ही है। इसका दूसरा हेतु यह है कि उस ऊपर के वाक्य के बाद 'पमत्ते तेजा—हार समुग्घादा णत्थि' इस दूसरे वाक्य में 'पमत्ते' यह पद धवला-कार ने दिया है इससे स्पष्ट हो जाता है कि यह कथन भाववेद की अपेक्षा से है और पहली पंक्ति का कथन द्रव्यवेद की अपेक्षा से है। यदि दोनों वाक्यों का अर्थ भावस्त्री ही किया जाता तो फिर धवलाकार पमत्ते पद क्यों देते ? आलापाधिकार में सर्वत्र यथा-योग्य एवं यथा सम्भव सम्बन्ध समन्वय करने के लिये सर्वत्र द्रव्यवेद और भाववेद की अपेक्षा से वर्णन किया गया है। यदि सोनी जी दोनों वाक्यों का भावस्त्री ही अर्थ ठीक समझते हैं तो

वे ऐसा कोई प्रमाण उपस्थित करें जिससे 'भावस्त्री वेद-विशिष्ट द्रव्य पुरुष की अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नहीं जाता है' यह बात सिद्ध हो। ऐसा प्रमाण उन्होंने या दूसरे विद्वानों ने आज तक एक भी नहीं बताया है जितने भी प्रमाण गोम्मटसार के वे प्रगट कर रहे हैं वे सब द्रव्यस्त्री की अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि के नहीं उत्पन्न होने के हैं हमने जो अर्थ किया है उसके लिये हम यहां प्रमाण भी देते हैं—

णत्थि णउंसयवेदो इत्थीवेदो णउंसइत्थि दुग
पुव्वत्त पुरुण जोगग चदुसु ट्ठाणेसु जाणेज्जो।

(गो० क० गा० ५६७ पृ० ६५६)

इसकी संस्कृत टीका में लिखा है—'असंयते वैक्रियिकमिश्र—कार्मणयोगयोः स्त्रीवेदो नास्ति, असंयतस्य स्त्रीष्वनुत्पत्तेः पुनः असंयतौदारिक-मिश्रयोगे प्रमत्ताहारकयोश्च स्त्रीषंढवेदौ न स्तः इति ज्ञातव्यम्'। इस गाथा और संस्कृत टीका से यह बात सर्वथा खुलासा हो जाती है कि चौथे गुणस्थान में वैक्रियिक मिश्र और कार्मण योग में स्त्रीवेद का उदय नहीं है क्योंकि असंयत मरकर स्त्री में पैदा नहीं होता। और असंयत के औदारिक मिश्र योग में तथा प्रमत्त के आहारक और आहार मिश्र योग में स्त्रीवेद और नपुंसक वेदों का उदय नहीं है। इस कथन से हमारा कथन स्पष्ट हो जाता है। और सोनी जी का कथन ग्रन्थ से विरुद्ध पड़ता है।

'मनुष्यणियां भी भावस्त्रियां होती हैं' ऐसा जो सोनी जी जगह २ बताते हैं सो ऐसा तो हम भी मानते हैं। मानुषी शब्द

भावकी और द्रव्यकी दोनों में आता है। जहां जैसा प्रकरण हो वहां वैसा अर्थ लगाया जाता है।

आगे चलकर सोनी जी गोम्मटसार जीवकांड की—'ओराले-पज्जत्ते' और 'मिच्छे सासणसम्मे' इन दो गाथाओं का प्रमाण देकर यह बता रहे हैं कि स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय वाले असंयत सम्यग्दृष्टि में औदारिक मिश्र काययोग नहीं होता है किन्तु वह पुंवेद के उदय में ही होता है। सो यह औदारिक मिश्र योग का कथन तो द्रव्यस्त्री की अपेक्षा से ही बन सकता है। उनका प्रमाण ही उनके मन्तव्य का बाधक है। आगे उन्होंने प्राकृत पञ्च संग्रह का प्रमाण देकर वही बात दुहराई है कि चौथे गुणस्थान में औदारिक मिश्र योग में स्त्रीवेद का उदय नहीं है केवल पुंवेद का ही उदय है। सो इस बात में आपत्ति किसको है? यह सोनी जी का प्रमाण भी स्वयं उनके मन्तव्य का घातक है। क्योंकि उन सब प्रमाणों से 'द्रव्यस्त्री की अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि मरकर उत्पन्न नहीं होता है' यही बात सिद्ध होती है, न कि सोनी जी के मन्तव्यानुसार भावस्त्री की सिद्धि। भावस्त्री का तो जन्म मरण ही नहीं फिर उसकी दृष्टि से औदारिक मिश्रयोग कैसे बनेगा इसे सोनी जी स्वयं सोचें यदि उन्हें हमारे कथन में शङ्का हो तो गोम्मटसार के विशेषज्ञों से विचार लेवें। आगे का प्रमाण भी पाठक देखें—

कम्मदापुरुषो णहि की संढो वि य अण्णयाइणं तुणा
जो संठवदे कमसो सायणपड परिमाणियव्वाणु।

गाथा ७८७ गो० कर्म०

इस गाथा का प्रमाण देकर सोनी जी ने बताया है कि असंयत सम्यग्दृष्टि की अपर्याप्त अवस्था में स्त्रीवेद का उदय नहीं है। और पहले नरक को छोड़कर नपुंसकवेद का भी उदय नहीं है।

सोनी जी के इन प्रमाणों को देखकर हमें पं० पन्नालाल जी दूनी कृत विद्वज्जन बोधक का स्मरण हो आया है, उसमें इन्होंने जितने प्रमाण सचित्त पुष्प फल पूजन, केसर चर्चन आदि के निषेध में दिये हैं वे सब प्रमाण सचित्त पुष्प फल पूजन आदि के साधक हैं। हमें आश्चर्य होता है कि इन्होंने वे प्रमाण क्यों दिये ? इन्होंने प्रमाण तो उन वस्तुओं के साधक दिये हैं, परन्तु अर्थ उन का इन्होंने उल्टा किया है। जोकि उन प्रमाणों से सर्वथा विपरीत पड़ता है ! ऐसे ही प्रमाण श्रीमान पं० पन्नालाल जी सोनी दे रहे हैं। वे भावस्त्री की सिद्धि चाहते हैं, उनके दिये हुये प्रमाण द्रव्यस्त्री की सिद्धि करते हैं। यही तो गोम्मटसार कर्मकांड की ७८७वीं गाथा का अर्थ संस्कृत टीका और पण्डित प्रवर टोडरमल जी के हिन्दी अनुवादमें पाठक पढ़ लेवें। हम उपर्युक्त गाथा का खुलासा मय टीका और पं० टोडरमल जी के हिन्दी अनुवाद सहित इस ट्रैक्ट में पहले लिख चुके हैं अतः यहां अधिक कुछ नहीं लिखते हैं।

आगे सोनी जी ने गोम्मटसार जीवकांड के आलापाधिकार का प्रमाण देकर यह बताया है कि 'मनुष्यिनी के चौथे गुणस्थान में एक पर्याप्त आलाप कहा गया है। वे यह भी लिखते हैं कि यह

सिद्धांत इसी बात को पुष्ट करता है कि गत्यंतर का सम्यग्दृष्टि जीव अपने साथ स्त्रीवेद का उदय नहीं लाता है। इसलिये अपर्याप्तालाप नहीं होता है, वे प्रमाण देते हैं—

मूलोघं मणुसतिये मणुसिणि अयदम्हि पज्जत्ते।

सोनी जी के इस प्रमाण से ही यही बात सिद्ध होती है कि—सम्यग्दृष्टि मरकर द्रव्यस्त्री पर्याय में नहीं जाता है। इसलिये आलापाधिकार के आयु क्रमानुसार में चौथे गुणस्थान में द्रव्यस्त्री के एक पर्याप्तालाप ही आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने बताया है।

इस गाथा की टीका में लिखा है कि 'तथापि योनिमदसंयते पर्याप्तालाप एवं योनिमतीनां पंचमगुणस्थानादुपरिगमनासंभवात् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं नास्ति।

(गो० जी० गाथा वही सोनी जी के दिये हुये प्रमाण की ७१४ पृष्ठ ११५३ टीका)

टीकाकार लिखते हैं कि—सामान्यादि तीन प्रकार के मनुष्यों के चौदह गुणस्थान होते हैं। परन्तु तो भी योनिमती मनुष्य (द्रव्यस्त्री) के असंयत में एक पर्याप्तालाप ही होता है, तथा योनिमती पांचवे गुणस्थान से ऊपर नहीं जाती इसलिये उसके द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नहीं होता है। यह सब द्रव्यस्त्री का ही विचार है। इस बात का और भी खुलासा इसी आलापाधिकार की ७१३वीं गाथा से हो जाता है। यथा—

सावदि य जोणिणि अवरे पुण्णो सेसेवि पुण्णोदु।

गो० जी० आलापाधिकार गाथा ७१३

पृष्ठ ११५२ टीका

इस गाथा की संस्कृत व हिन्दी टीका में स्पष्ट लिखा है कि—'योनिमत्संयते पर्याप्तालाप एवं बद्धायुष्कस्यापि सम्यग्दृष्टेः स्त्रीषंढयोरनुत्पत्तेः' यह कथन तिर्यंच स्त्री की अपेक्षा से है। फिर भी मानुषी के समान है। और द्रव्यस्त्री का निरूपक है क्योंकि आयु-बन्ध कर लेने पर भी सम्यग्दृष्टि द्रव्यस्त्री और छह पृथिवियों में पैदा नहीं होता है। यह हेतु दिया है, आगे सोनी जी ने 'अपर्याप्तिकासु तु आद्ये सम्यक्त्वेन सह स्त्रीजननाभावात्'' यह राजवार्तिक का प्रमाण 'भाववेद स्त्रीवेद के उदय में द्रव्य मनुष्य के आदि के दो ही गुणस्थान होते हैं'। इस बात की सिद्धि में दिया है परन्तु यह प्रमाण भी सोनी जी के मन्तव्य के विरुद्ध द्रव्य स्त्रीओं के गुणस्थानों का ही विधान करता है, यहां पर स्त्रीवेद के उदय की बात भी अकलङ्कदेव ने नहीं लिखी है किन्तु सम्यक्त्व के साथ स्त्री पर्याय में जन्म नहीं होता है ऐसा स्पष्ट लिखा है। इन प्रमाणों को देते हुये सोनी जी लिखते हैं "इसलिये भावस्त्री द्रव्य मनुष्य के भी अपर्याप्त अवस्था में पहला और दूसरा ये दो ही गुणस्थान होते हैं" यह बात सोनी जी ऊपर के प्रमाणों से सिद्ध करना चाहते हैं, परन्तु वे सब ही अपर्याप्त अवस्था को सिद्ध करते हैं और उसी अवस्था में सम्यग्दृष्टि के जन्म लेने का निषेध करते हैं। यह बात हम बहुत स्पष्ट कर चुके हैं।

आगे सोनी जी ने हमसे प्रश्न किया है कि "भाववेद और

मनुष्यगति क्या चीज है? यदि वह, भावस्त्री द्रव्य मनुष्य है। तो उसका कथन और उसके गुणस्थानों का उल्लेख जब द्रव्यपुरुष में आ ही जायगा फिर यह शङ्का समाधान क्या आकाश में उड़ती हुई चिड़िया के लिये हुआ?" इस प्रश्न के उत्तर में इतना कहना ही पर्याप्त है कि यदि द्रव्य पुरुष के साथ केवल भावस्त्री का ही सम्बन्ध होता तब तो पृथक २ वर्णन और शङ्का समाधान नहीं करना पड़ता उसी में अन्तर्भूत हो जाता। परन्तु वहां तो द्रव्य-पुरुष के साथ कभी भावपुरुष कभी भावस्त्री, कभी भाव नपुंसक ऐसे तीन विकल्प बने हुये हैं, इसलिये उनको भिन्न २ विवक्षा से भिन्न २ निरूपण करना आचार्यों को आवश्यक होगया। परन्तु ९२-९३ सूत्रों में यह तीन विकल्प नहीं है वहां केवल स्त्रीवेद के उदय की अपेक्षा है। यदि वहां उन सूत्रों को भाववेद-प्रधान माना जायगा तो द्रव्य पुरुष के साथ ग्रहण होगा, और ८९-९०-९१ सूत्रोंमें गर्भित हो जायगा यह शङ्कापक्ष तदवस्थ रहता है।

आगे सोनी जी ने हमसे दूसरा प्रश्न किया है वह एक विचारणीय कोटि का है वे लिखते हैं कि "पण्डित जी! जिनका शरीर लिङ्गांकित है वे तो ८९-९०-९१ सूत्र में आ गये और जिन का शरीर योन्यांकित है वे ९२-९३ सूत्र में गर्भित हो गई अतः कृपया बताइये वे किसमें गर्भित हुये जिनका शरीर न लिङ्गांकित और न योन्यांकित है किन्तु किसी भी चिन्ह विशेष से रहित है। या षट्खण्डागमकार की गलती बताइये, कुछ न कुछ उत्तर बताइये।"

इसके उत्तर में संक्षेप में हम इतना लिखना ही पर्याप्त समझते हैं कि आचार्यों ने जिस प्रकार पुरुषवेद और स्त्रीवेद की प्रधानता से भिन्न २ सूत्रों द्वारा स्पष्ट विवेचन किया है वैसा विवेचन नपुं-सकवेद की प्रधानता से नहीं किया है। उसका मुख्य हेतु यह प्रतीत होता है कि जिस प्रकार पुरुष और स्त्रीवेद वालों के लिंग और योनि नियत चिन्ह व्यंजन प्रसिद्ध हैं और प्रत्यक्ष हैं। उस प्रकार नपुंसकवेद का कोई नियत चिन्हांकित द्रव्य रूप नहीं पाया जाता है क्योंकि एकेंद्रिय से लेकर चौइन्द्रिय जीवों तक सभी नपुंसक वेदी हैं। वृक्ष वनस्पतियों में तथा एकेन्द्रिय से लेकर चौइन्द्री जीवों में कोई नियत आकार नहीं है इसलिये नियत चिन्ह नहीं होने से नपुंसकवेद की प्रधानता से वर्णन करना अशक्य है। जहां भाववेद और द्रव्यवेद में एक नियत शरीर रूप है वहां नपुंसकों का कथन सूत्र द्वारा किया ही है। संख्या भी गिनाई गई है जैसे नारकियों की। मनुष्यों में पुरुष स्त्री के समान कोई एक नियमित चिन्ह व्यक्त नहीं होने से द्रव्य नपुंसकों का पृथक् निर्देश सूत्रों द्वारा नहीं किया गया है। षटखण्डागम कार की गलती तो सम्भव नहीं है। हां वर्तमान उन विद्वानों की समझ की कमी और बहुत भारी गलती अवश्य है जो महान् आचार्यों की एवं टीकाकारों की गलती समझ लेते हैं।

आगे सोनी जी ने ९३वें सूत्रमें संयत शब्द होना चाहिये इस सम्बन्ध में धवला टीका के वाक्यों पर ऊहापोह किया है, हम संयत शब्द के विषय में बहुत विवेचन इसी ट्रैक्ट के दो स्थलों

पर कर चुके हैं अतः यहां सब बातों का समाधान किया गया है। अब यहां पुनः लिखना अनुपयोगी होगा।

श्रीमान् पं० फूलचन्द जी शास्त्री के लेख का उत्तर

जैन सन्देश— ता० २२ अगस्त १९४६ के अङ्क में श्रीमान पं० फूलचन्द जी शास्त्री महोदय का लेख है। उस लेख में गोम्मटसार कर्मकांड की गाथाओं का प्रमाण देकर यही सिद्ध किया गया है कि द्रव्य मनुष्य के भी भाव स्त्रीवेद का उदय हो तो भी उस स्त्रीवेद के उदय के साथ औदारिक मिश्र में चौथा गुणस्थान उसके नहीं होता है। इसकी सिद्धि में "सासणथी वेदछिदी, अयदंणादेज्ज दुब्भ सासणेतेमिछिदा अयदेवणिज्ज, "इन गाथाओं का प्रमाण उन्होंने दिया है परन्तु ये प्रमाण द्रव्यस्त्री के ही सम्बन्ध से हैं, सम्यग्दृष्टि जीव मरकर सम्यग्दर्शन के साथ अपर्याप्त अवस्था में द्रव्यस्त्री में उत्पन्न नहीं होता है, इसी की सिद्धि के विधायक ये गोम्मटसार कर्मकांड के प्रमाण हैं। यह बात श्री० पं० पन्नालाल जी सोनी के लेखों के उत्तर में पीछे ही स्पष्ट कर चुके हैं, उसी को पुनः यहां लिखना पिष्टपेषण एवं व्यर्थ होगा। इन प्रमाणों से यह बात सर्वथा सिद्ध नहीं होती है कि भावस्त्री वेद विशिष्ट द्रव्य मनुष्य की अपर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि जीव पैदा नहीं होता है। ऐसा कोई पद हो तो उक्त शास्त्री जी प्रगट करें। हम तो स्त्रीत्वेनानुत्पन्नत्वात् स्त्रीत्वेन अननाभोवात् इत्यादि प्रमाणों से और चारो आनुपूर्वियों के अनुदय होने से स्पष्ट कर चुके हैं कि उक्त दब गाथायें द्रव्यस्त्री के ही सम्बन्ध से हैं। अतः हमने जो आपत्ति ९२-९३

एवं ८६-६०-६१ सूत्रों में अपने लेखों में बताई है वह लचस्थ है। उसका कोई समाधान भावपक्षी विद्वानों की ओर से नहीं हुआ है।

शास्त्रीजी ने जो यह बात लिखी है कि "जैसे तो षटखण्डागम कषायप्राभृत आदि सभी सैद्धान्तिक ग्रन्थों में वा धार्मिक ग्रन्थों में मनुषिनी शब्द का प्रयोग स्त्रीवेद के उदय की अपेक्षा से किया गया है मूल ग्रन्थों में वेद में द्रव्यवेद विवक्षित ही नहीं रहा है पर यह ६२वां सूत्र भी भाववेद की अपेक्षा से ही निर्मित हुआ है।"

इन पंक्तियों के उत्तर में हम इतना ही शास्त्री जी से पूछते हैं कि 'मूल ग्रन्थों में सर्वत्र भाववेद ही लिया जाता है द्रव्यवेद नहीं लिया जाता'। यह बात आपने किस आधार से कही है कोई प्रमाण तो देना चाहिये। जो प्रमाण गोम्मटसार के दिये हैं वे सब द्रव्यकी के ही प्रतिपादक हैं अन्यथा उनका खण्डन करें कि इस हेतु से वे द्रव्यवेद के नहीं किन्तु भाववेद के हैं। बिना प्रमाण के आपकी बात मान्य नहीं हो सकती है। इसके विपरीत हम इस ट्रैक्ट में षटखण्डागम गोम्मटसार और राजवार्तिक के प्रमाणों से यह बात भली भांति सिद्ध कर चुके हैं कि स्त्रीवेद आदि वेदों का संघटन द्रव्यशरीरों में ही किया गया है। द्रव्य शरीरों की पर्याप्तता, अपर्याप्तता के आधार पर ही गुणस्थानों का यथासम्भव समन्वय किया गया है। इस ट्रैक्ट के पढ़ने से आप स्वयं उस दृष्टिकोण को समझ लेंगे। आपने और दूसरे सभी भावपक्षी विद्वानों ने उस दृष्टिकोण को समझा ही नहीं है या पक्षमोह में पड़कर समझकर भी भ्रम पैदा किया है यह बात आप

लोग ही जानें। मूल ग्रन्थ और टीका ग्रन्थों के प्रमाणों को देखते हुये और उनके विरुद्ध आप लोगों का वक्तव्य पढ़ते हुये हमें इतना कटु सत्य लिखना पड़ा है इसलिये आप लोग हमें क्षमा करें। हमारा इरादा आप पर या दूसरे विद्वानों पर आक्षेप करने का सर्वथा नहीं है किन्तु वस्तुस्थिति बताने का है। ६८-६३ सूत्र और ८६-६०-६१ ये सब सूत्र भाववेद की मुख्यता नहीं रखते हैं किन्तु वे द्रव्यवेद अथवा द्रव्यशरीर की ही मुख्यता रखते हैं और द्रव्य शरीर भी वहां वही लिया जाता है जहां जिस वेद की अपेक्षा से कथन है। ऐसा नहीं है कि कथन तो मानुषी का है और द्रव्य शरीर मनुष्य का लिया जाय। जिस का कथन है उसी की अपर्याप्त पर्याप्त अवस्था और द्रव्य शरीर ग्रहण करना सिद्धांत-विहित है। इसी बात की सिद्धि हम उन सूत्रों की व्याख्या और प्रकरण में अनेक प्रमाणों से स्पष्ट कर चुके हैं।

आगे पं० फूलचन्द जी शास्त्री ने धवल के ८७वें सूत्र का प्रमाण देकर यह बताया है कि वहां पर स्त्रीवेद विशिष्ट तिर्यंचों का ग्रहण है। प्रमाण यह है—

'स्त्रीवेदविशिष्टतिरश्चां विशेषगतिपादनार्थमाह'

धवला पृष्ठ ३२७

इतना लिखकर वे लिखते हैं कि इसी के समान ६२वां सूत्र स्त्रीवेद वाले मनुष्यों के सम्बन्ध में है, द्रव्यस्त्रियों के सम्बन्ध में नहीं।

शास्त्री जी से हम यह पूछते हैं कि ऊपर की धवला की पंक्ति

से स्त्रीवेद विशिष्ट तिर्यंच और स्त्री के समान ९२ वां सूत्रगत मानुषी भावस्त्री ही है, द्रव्यस्त्री नहीं है यह बात आप किस आधार से कहते हैं ? स्त्रीवेद विशिष्ट तो हम भी मानते हैं इसमें क्या विरोध है ? परन्तु उन स्त्रीवेद विशिष्ट वालों का द्रव्यवेद स्त्रीवेद नहीं है किन्तु द्रव्यपुरुष शरीर है इसकी सिद्धि तो आप नहीं कर सके हैं इसके विपरीत हम तो यह सिद्ध कर चुके हैं कि वे स्त्रीवेद-विशिष्ट जीव द्रव्यस्त्री वेद वाले ही हैं। औदारिक मिश्र एवं पर्याप्त अपर्याप्त सम्बन्धित होनेसे वहां उन स्त्रीवेद वालों का द्रव्य पुरुष शरीर नहीं माना जा सकता है।

वीरसेन स्वामी ने आलापाधिकार में मानुषी के अपर्याप्त अवस्था में चौथा गुणस्थान नहीं बताया है यह जो आपका लिखना है वह भी हमें मान्य है किन्तु आप उसे भावस्त्री वेद कहते हैं हम द्रव्यस्त्री वेद के ही आधार से उसे बताते हैं। आपने अपनी बात की सिद्धि में कोई प्रमाण एवं हेतु नहीं दिया है, हम सप्रमाण सिद्ध कर चुके हैं।

आगे आपने जो गोम्मटसार के आलापाधिकार का 'मूलोघं मणुसत्तिए'—यह प्रमाण देकर मनुष्यणी के चौथे गुणस्थान में एक पर्याप्त आलाप ही बताया है सो ठीक है हमें इस आगम में कोई विरोध नहीं है परन्तु आप जो उसका अर्थ भावस्त्री करते हैं वह आगम-विरुद्ध पड़ता है उसका अर्थ 'द्रव्यस्त्री' भी है इसी प्रमाण को सोनी जी ने दिया है उसका उत्तर हम

सहेतुक ऊपर कह चुके हैं अतः फिर दुहराना व्यर्थ है।

आलापाधिकार के सम्बन्ध में एक बात का हम ध्यान दिला देना चाहते हैं कि चौदहमार्गणा, चौदहगुणस्थान, छह पर्याप्ति दश प्राण, चार संज्ञायें और उपयोग इन बीसों प्ररूपणाओं का यथा सम्भव परस्पर समन्वय ही आलापाधिकार में किया जाता है। इस लिये वहां पर द्रव्य और भाव रूप से भिन्न २ विवक्षा नहीं की जाती किन्तु यथा सम्भव जहां तक जो द्रव्य और भाव रूप में बन सकता है वहां तक उन सबको इकट्ठा कर गिनाया जाता है। इसलिये आलापाधिकार में स्त्री वेद के साथ चौदह गुणस्थान भी बताये गये हैं और साथ ही स्त्रीवेद के अपर्याप्त आलाप में चौथे गुणस्थान का निषेध भी कर दिया, है वह चौथा गुणस्थान स्त्रीवेद के पर्याप्त में ही सिद्ध हो सकता है। इसी से द्रव्यस्त्री के गुणस्थानों का परिज्ञान हो जाता है। आलापाधिकार पृथक २ विवेचन नहीं करता है उसका नाम ही आलाप है। इसलिये स्त्रीवेद के साथ पर्याप्त अवस्था में भाववेद से सम्भव होने वाले चौदह गुणस्थान भी उसमें बता दिये गये हैं।

और भी विशेष बात यह है कि आलाप तीन कहे गये हैं एक सामान्य, दूसरा पर्याप्त, तीसरा अपर्याप्त। उसमें अपर्याप्त आलापके दो भेद किये गये हैं। बस इन्हीं आलापोंके साथ गुणस्थान, मार्गणा, प्राण, संज्ञा, उपयोग आदि घटाये गये हैं। जैसा कि—

सामण्णं पज्जत्तमपज्जत्तं चेदि तिविए आलाशा
दुवियप्पमपज्जत्तं लद्धी णिव्वत्तगं चेदि।

(गो० जी० गा० ७०८)

अथ ऊपर किया जा चुका है। इन भेदों के आधार पर आलाप वेदों की अपेक्षा से पृथक २ द्रव्य स्त्री द्रव्य पुरुष में गुणस्थान विधान से नहीं कहे जाते हैं जिससे कि द्रव्य स्त्री के पांच गुणस्थान बताये जाते। जैसा कि भाववेदी पण्डितों का आलापाधिकार के नामोल्लेख से प्रश्न खड़ा किया जाता है। किन्तु पर्याप्त मनुष्य के सम्बन्ध के साथ जहां तक गुणस्थान हो सकते हैं वे सब गिनाये जाते हैं। इसीलिये स्त्रीवेद के उदय में पर्याप्त मनुष्य के १४ गुणस्थान बताये गये हैं। भाववेद की दृष्टि से स्त्री के भी १४ गुणस्थान गिनाये गये हैं। आलापाधिकार की इस कुञ्जी को — पर्याप्त अपर्याप्त और सामान्य इन तीनों की विवक्षा को—समझ लेने से फिर कोई प्रश्न खड़ा नहीं होता है। जैसे—मार्गणाओं में आदि की चार मार्गणायें और योग के अन्तर्गत छह पर्याप्तियां द्रव्य शरीर की ही निरूपक हैं यह मूल बात समझ लेने पर ९२-९३वें सूत्रों का और संयत पद के अभाव का निर्णीत सिद्धांत समझ में आ जाता है ठीक उसी प्रकार आलापाधिकार की उपर्युक्त कुञ्जी को ध्यान में लेने से द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थान क्यों नहीं कहे गये, भावस्त्री के १४ गुणस्थान क्यों बताये गये? ये सब प्रश्न फिर नहीं उठते हैं।

'आलापाधिकार द्वारा भाववेद की ही सिद्धि होती है' ऐसा

भावपक्षी विद्वान बराबर लिख रहे हैं परन्तु आलापाधिकार से दोनों वेदों का सद्भाव सिद्ध होता है देखिये—

मणुसिणि पमत्तविरदे आहारदुगं तु णत्थि णियमेण।

(गो० जी० गाथा ७१५ पृष्ठ ११५४)

इसका अर्थ संस्कृत टीका में इस प्रकार लिखा है—

"द्रव्यपुरुष--भावस्त्री—रूपप्रमत्तविरते आहारकतदंगोपांग-नामोदयः नियमेन नास्ति।"

तथा च—भावमानुष्यां चतुर्दश गुणस्थानानि द्रव्यमानुष्यां पंचैवेति ज्ञातव्यम।

इसका हिन्दी अर्थ पं० टोडरमल जी ने इस प्रकार किया है द्रव्य पुरुष और भावस्त्री ऐसा मनुष्य प्रमत्तविरत गुणस्थान होइ ताके आहारक अर आहारक आंगोपांग नामकर्म का उदय नियम करि नाहीं है।

बहुरि भाव मनुषिणी विषें चौदह गुणस्थान हैं द्रव्य मनुष्यणी विषें पांच ही गुणस्थान हैं। संस्कृत टीकाकार और पण्डित प्रवर टोडरमल जी को इतने महान ग्रन्थ की टीका बनाने का पूर्णाधिकार सिद्धांत रहस्यज्ञता के नाते प्राप्त था तभी इन्होंने मूल गाथाओं की संस्कृत व हिन्दी व्याख्या की है। इसलिये उन्होंने वे टीकायें 'मूल ग्रन्थ को बिना समझे ग्रन्थाशय के विरुद्ध कर डाली हैं' ऐसी बात जो कोई कहते हैं वे हमारी समझ से वस्तु स्वरूप का अपलाप करने का अनुसाहस करते हैं। मूल में और टीकाओं में कोई भेद नहीं है। जिन्हें भेद प्रतीत होता है वह उनकी

सम्यक्त्वधारीका ही दोष है। अस्तु। इस आलापाधिकारसे भी भाव वेद के निरूपण के साथ द्रव्यवेद की सिद्धि भी हो जाती है। यदि द्रव्यवेद की सिद्धि नहीं होती तो स्त्रीवेद के उदय में और पहिले नरक को छोड़कर शेष नरकों के नपुंसकवेद के उदय में अपर्याप्त आलाप में चौथे गुणस्थान का अभाव और उनके पर्याप्तालाप में ही सद्भाव कैसे बताया जाता? अतः आलापाधिकार से सर्वथा भाववेदकी सिद्धि कहना अधिकार विरुद्ध है। यदि 'आलापाधिकार में भाववेद का ही कथन है, द्रव्यवेद का नहीं है' ऐसा माना जाय तो नीचे लिखा दोष आता है— सत्प्ररूपणा—अनुयोग द्वार के वेद आलाप में स्त्री की अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व और सासादन ये दो ही गुणस्थान बताये गये हैं जैसा कि प्रमाण है—

इत्थिवेद अपज्जत्ताणं भण्णमाणे अत्थि वे गुणट्ठाणाणि।

(पृष्ठ ४३७ धवल सिद्धांत)

यदि आलापाधिकार में द्रव्यवेद का वर्णन नहीं है तो स्त्रीवेद की अपर्याप्त अवस्था में मिथ्यात्व सासादन और सयोग केवली ऐसे तीन गुणस्थान धवलाकार बताते जैसा कि उन्होंने गति-आलाप में बताया है यथा—

तासिंचेव अपज्जत्ताणं भण्णमाणे अत्थि तिण्णि गुणट्ठाणाणि।

(पृष्ठ ४५८ धवल सिद्धांत)

ऐसा भेद क्यों? जबकि सर्वत्र भाववेद का ही कथन है। इस लिये यह समझ लेना चाहिये कि आलापों में पर्याप्त अपर्याप्त के विधान की ही मुख्यता है उनमें सम्भव गुणस्थान द्रव्य और भाव

दोनों रूप से बताये गये हैं। अस्तु।

पं० फूलचन्द जी शास्त्री का यह भी कहना है कि 'द्रव्यवेद तो बदल जाता है परन्तु भाववेद नहीं बदलता,' साथ ही वे यह भी लिखते हैं 'द्रव्यस्त्री के मुक्ति जाने की चर्चा कुछ शताब्दियों से ही चल पड़ी है। तभी से टीका और उत्तर कालवर्ती ग्रन्थों में द्रव्य-वेदों का भी उल्लेख किया जाने लगा है'।

शास्त्री जी ने इन बातों की सिद्धि में कोई आगम प्रमाण नहीं दिया है। अतः ऐसी आजकल की इतिहासी खोज के समान अटकलपच्चू की बातों का उत्तर देना हम अनावश्यक समझते हैं। पदार्थ विपर्यास नहीं हो, इसके लिये दो शब्द कह देना ही पर्याप्त समझते हैं कि यदि द्रव्यवेद बदल जाता है तो गोम्मटसार, राज-वार्तिक आदि सभी ग्रन्थों में जो जन्म से लेकर उस भव के चरम समय तक द्रव्यवेद एक ही बताया गया है और भाववेद का परिवर्तन बताया गया है वह सब कथन एवं वे सब शास्त्र इस खोज के सामने मिथ्या ही ठहरेंगे। जैसा कि लिखा है—

भवप्रथमसमयमादिकृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंतं द्रव्यपुरुषो-भवति तथा भवप्रथम समयमादिं कृत्वा तद्भवचरमसमयपर्यंतं द्रव्यस्त्री भवति।

(गो० जी० पृष्ठ ५६१)

यह टीका गोम्मटसार की 'वेदस्सोदयेण वन्ने पायेण समा-कहिं विसमा'। इस गाथा की है। इसी प्रकार अन्यत्र भी है। आंगोपांग नामकर्म के उदय से होने वाला शरीर विशिष्ट चिन्ह

है। वह शरीर का ही एक उपांग है, वह बदल जाता है यह अशक्य बात है। भले ही अंगुली आदि के समान वह भी काटा जा सकता है परन्तु द्रव्यवेद बदल नहीं सकता, इस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध उदाहरण जो फलटण निवासी श्रीमान् सेठ तिलकचंद वेणीचन्द शाह वकीलने स्वयं अपनी आंखोंसे देखा। है हमें अभी कचलाना में इस दृष्टान्त को सुनाते समय बताया है उसे हम यहां प्रगट कर देते हैं—कोरेगांव (शोलापुर) में एक गोदावरी नाम की ब्राह्मण कन्या थी, उसका एक वर के साथ विवाह हो गया तब अनेक विकल्प खड़े होने से घर वालों ने जांच कराई, मालूम हुआ कि उसके कोई चिन्ह नहीं है किन्तु एक छिद्र है जिससे लघु-शङ्का होती है। डाक्टर से आपरेशन कराया गया, ऊपर की त्वचा निकल जाने से उसके पुरुषलिंग प्रगट हो गया। फिर उस गोदावरी का नाम गोपालराव पड़ा। और किसी कन्या के साथ उसका विवाह भी हो गया है वह अभी मौजूद है।

पं० फूलचन्द जी शास्त्री के मत से तो उसका द्रव्यलिंग बदल गया समझना चाहिये। गोदावरी से गोपालराव नाम भी बदल गया है। परन्तु बात इसके विपरीत है। वास्तव में लिंग नहीं बदला है, पुरुषलिंग उत्पत्ति से ही था परन्तु रचना विशेष से ऊपर त्वचा आ जाने से वह द्रव्यलिंग छिपा हुआ था। आपरेशन (चीरा लगने से) होने से वह द्रव्यचिन्ह प्रगट हो गया।

जिन्हें सन्देह होवे कोरेगांव आकर उस गोपालराव को अभी देख सकते हैं। इसी प्रकार के निमित्तों से आजकल द्रव्यवेद

बदलने की बात भी कही जाने लगी है। परन्तु ये सब भीतरी खोज-शून्य एवं वस्तु शून्य भ्रामक बातें हैं। असम्भव कभी सम्भव नहीं हो सकता। गर्भ से पहले अनेक नामकर्मों का उदय शुरू हो जाता है। इन्हीं के अनुसार शरीर रचनायें होती हैं। द्रव्यवेद बदलने की थियोरी सुनकर—डारविन की थियोरी के समान ही उपस्थित विद्वानों को वहां बहुत हंसी आई थी अस्तु।

भाववेद संचारी भाव है उसे वे नहीं बदलने वाला बताते हैं जबकि नोकषाय कर्मोदय जनित वैभाविक भाव सदैव बदलता रहता है।

इसी प्रकार द्रव्यस्त्री की मुक्ति की चर्चा अभी कुछ समय से ही चलाई जाती है यह बात भी दिगम्बर जैनागम से सर्वथा बाधित है। कारण जबकि द्रव्य पुरुष और द्रव्यस्त्री अनादि से चले आते हैं, द्रव्यस्त्री के उत्तम संहनन नहीं होता है यह बात भी अनादि से है तब उसकी मुक्ति का निषेध अनादि—सिद्ध एवं सर्वज्ञ प्रतिपादित है।

आगे पं० फूलचंद जी शास्त्री लिखते हैं कि "यदि कोई प्रश्न करे कि "जीवकांड से द्रव्यस्त्री की मुक्ति का निषेध बताओ तो आप क्या करेंगे? बात यह है कि मूल ग्रन्थों में भाववेद की अपेक्षा से ही विवेचन किया जाता है।"

इसके उत्तर में यह बात है कि गोम्मटसार एक ग्रन्थ है उसके दो भाग हैं। १-पूर्वभाग २-उत्तरभाग। जीवकांड और कर्मकांड ऐसे कोई दो ग्रन्थ नहीं हैं। द्रव्यस्त्री की मुक्ति का निषेध

कर्मकांड की इस नीचे की गाथा से हो जाता है—

अन्तिमतियसंहणणस्सुदओ पुणकम्मभूमिमहिलाणं ।
आदिमतिगसंहणणं णत्थित्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥

गो० क० गा० ३२

इस गाथा के अनुसार कर्मभूमि की द्रव्यस्त्रियों के अन्तिम तीन संहननों का ही उदय होता है, आदि के तीन संहनन उनके नहीं होते हैं । ऐसा जिनेन्द्रदेव ने कहा है ।

इस गोम्मटसार के प्रमाण से तीन बातें सिद्ध होती हैं । १–द्रव्यस्त्री मोक्ष नहीं जा सकती । २–गोम्मटसार में भाववेद का ही कथन है यह बात बाधित हो जाती है । क्योंकि इस गाथा में द्रव्यस्त्री या महिला पद से स्पष्ट उल्लेख मिलता है । ३ द्रव्यस्त्री की मुक्ति के निषेध कथन की अनादिता सिद्ध होती है । क्योंकि श्री नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती कहते हैं कि द्रव्यस्त्री के आदि के तीन संहनन नहीं होते हैं यह बात जिनेन्द्रदेव ने कही है । और मुक्ति की प्राप्ति उत्तम संहनन से ही होती है जैसा कि सूत्र है—उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् (तत्वार्थसूत्र) शुक्ल ध्यान उत्तम संहनन वालों को ही होता है और शुक्ल ध्यान के बिना मुक्ति नहीं हो सकती है । द्रव्यस्त्रियों के उत्तम संहनन होने का सर्वथा निषेध है । इसीलिये सर्वज्ञ प्रतिपादित परम्परा से आगम में द्रव्य स्त्री की मुक्ति का निषेध है ।

इससे एक ही मूल ग्रन्थ गोम्मटसार में द्रव्यस्त्री के मोक्ष जाने का निषेध स्पष्ट सिद्ध होता है । जैसे तत्वार्थ सूत्र के दशवें अध्याय

में मोक्ष तत्व का वर्णन है। यहां पर यह प्रश्न करना व्यर्थ होगा कि तत्वार्थसूत्र के छठे अध्याय में कोई संवर निर्जरा और मोक्ष तत्व का विधान बतावें तो सही? उत्तर में यही कहना होगा कि तत्वार्थ सूत्र ग्रन्थ में उक्त तीनों का स्वरूप अवश्य है। इसी प्रकार गोम्मटसार एक पूर्ण ग्रन्थ है उसमें द्रव्यस्त्री को मोक्ष का निषेध पाया जाता है। जीवकांड पूर्ण ग्रन्थ नहीं है वह उसका एक भाग है। दोनों मिलकर पूर्ण ग्रन्थ होता है।

आगे शास्त्री जी एवं दूसरे विद्वान (भावपक्षी) कहते हैं 'कि द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थान होते हैं यह बात चरणानुयोग का विषय है इसलिये चरणानुयोग शास्त्रों में उसे समझ लेना चाहिये षट्खण्डागम करणानुयोग शास्त्र है अतः उसमें द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थानों का वर्णन नहीं है'

इन विद्वानों का ऐसा कहना केवल इसलिये है कि ९३ सूत्रमें संयत शब्द जुड़ा हुआ रहना चाहिये क्योंकि उस के हट जाने से द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थान इसी सूत्र से सिद्ध हो जाते हैं। भले ही आचार्य भूतबलि पुष्पदन्त का कथन और षट्खण्डागम शास्त्र अधूरा एवं अनेक सूत्रों में दोषाधायक समझा जावे, परन्तु उनकी बात रह जानी चाहिये। हम पूछते हैं कि द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थान चरणानुयोग शास्त्रों से कैसे जाने जा सकते हैं? उन शास्त्रों में तो श्रावक, नैष्ठिक साधक श्रावकभेद, मुनिधर्मस्वरूप, वस्त्रादित्याग, अतीचारादिनिरूपण व्रतों के भेद प्रभेद आदि बातों का ही वर्णन पाया जाता है, 'गृहमेध्यनगाराणां चारित्रोत्पत्तिवृद्धि-

रक्षांग ।' इस आचार्य समन्तभद्र स्वामीके विधान से सुसिद्ध है। फिर तिर्यंचों के पांच गुणस्थान, नारकियों के चार गुणस्थान देवों के चार गुणस्थान और इनकी अपर्याप्त अवस्था के गुणस्थान तो षट्खण्डागम से जाने जांय और वह जानना करणानुयोग का विषय समझा जाय, मनुष्य के चौदह गुणस्थानों का जानना भी इसी षट्खण्डागम से सिद्ध हो जाय, केवल द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थान ही इस षट्खण्डागम में नहीं जाने जांय, और केवल द्रव्यस्त्री के गुणस्थान ही चरणानुयोग का विषय बताया जाय, बाकी तीनों गतियों के गुणस्थान करणानुयोग का विषय माना जाय और वह षट्खण्डागम से ही जाना जाय! यह कोई सहेतुक एवं शास्त्र सम्मत बात तो नहीं है, केवल संयत पद को जुदा रखने के लिये हेतु शून्य तर्कणा मात्र है। अन्यथा वे विद्वान प्रकट करें कि केवल द्रव्यस्त्रीके ही गुणस्थान चरणानुयोगका विषय क्यों? बाकी गतियों के गुणस्थान उसका विषय क्यों नहीं? केवल द्रव्यस्त्री के गुणस्थानों का करणानुयोग से निषेध कर हमें तो ऐसा विदित है कि आप लोग भी द्रव्यस्त्री को मोक्ष का साक्षात पात्र, हीन संहनन में भी बनाना चाहते हैं। आपका वैसा भाव नहीं होने पर भी आपका यह चरणानुयोग का विधान ही द्रव्य स्त्री के लिये मोक्ष का विधान कर रहा है। यदि आप भावस्त्री के बताये हुये चौदह गुणस्थानों को एक बार चरणानुयोग का विषय कह देवें तो कम से कम यह युक्ति तो आप दे सकेंगे कि चौदह गुणस्थान वास्तव में तो पुरुष के ही होते हैं। स्त्री के तो आज्ञा परक कर्मोदय मात्र

है। परन्तु द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थान करणानुयोग से विहित हैं। वे उसके वास्तविक वस्तुभूत हैं। अतः उनका विधान षट्खण्डागम में अवश्य है।

इस प्रकार श्रीमान पं० फूलचन्द जी शास्त्री महोदय के लेखों का भी समाधान हो चुका।

ये सभी भावपक्षी विद्वान ९३वें सूत्र में संजद पद का रहना आवश्यक बताते हैं, और इसी के लिये षट्खण्डागम सिद्धांत के सूत्रों का अर्थ बदल रहे हैं हम उनसे यह पूछते हैं कि ९३वां सूत्र जब औदारिक काययोग मार्गणा का है तो वह भावस्त्री का प्रतिपादक किस प्रकार हो सकता है? क्योंकि भावस्त्री तो नोकषाय स्त्रीवेद के उदय में ही हो सकती है, वह बात वेद मार्गणा में सिद्ध होगी। यहां तो औदारिक काययोग मार्गणा का प्रकरण है और उसी के साथ पर्याप्ति नामकर्म के उदय में होने वाली षटपर्याप्तियों की पूर्णता का समन्वय है। इस अवस्था में मानुषी को विवक्षा में सिवा द्रव्यवेद के भाववेद की मुख्य विवक्षा आ कैसे सकती है? यदि यहीं पर भावस्त्री वेद को मुख्य विवक्षा मान ली जाय तो फिर वेदमार्गणा में वेदानुवाद से क्या कथन होगा? षटखण्डागम धवल सिद्धांत के वेदानुवाद प्रकरण के सूत्रों को देखिये उनमें कहीं भी "पज्जत्ता अपज्जत्ता' ये पद नहीं हैं। इसलिये सूत्र १०१ से लेकर आगे की सब मार्गणाओं का कथन भाववेद की प्रधानता से है। वहां द्रव्य शरीर के ग्रहण का कारण योग और पर्याप्ति का मुख्य कथन नहीं है। परन्तु सूत्र ९३वें में तो औदारिक काययोग

और पर्याप्ति का प्रकरण होने से मानुषी के द्रव्य शरीर का ही मुख्य ग्रहण है। और उसी के साथ गुणस्थानों का समन्वय है अतः ९३वें सूत्रमें संयत पद का ग्रहण किसी प्रकार सिद्ध नहीं होता है। हमारे इस सहेतुक विवेचन पर उक्त विद्वानों को निष्पक्षदृष्टि से शांतिपूर्वक विचार करना चाहिये।

द्रव्यवेद का क्रमबद्ध उल्लेख क्यों नहीं?

भावपक्षी सभी विद्वान एक मत से यह बात लिख रहे हैं कि 'गोम्मटसार और षट्खण्डागम सिद्धांत शास्त्र में सर्वत्र भाववेद का ही वर्णन है, इन शास्त्रोंमें द्रव्यवेद का उल्लेख कहीं भी नहीं है षट्खण्डागम के सूत्रों में और गोम्मटसार की गाथाओं में द्रव्य-वेद का वर्णन कहीं भी नहीं मिलता है इससे यह बात सिद्ध होती है कि उक्त ग्रन्थोंमें सब वर्णन भाववेद का ही किया गया है' ऐसा भावपक्षी विद्वानों का प्रत्येक लेख में मुख्य हेतु से कहना है।

परन्तु उनका यह कहना इन ग्रन्थों के अन्तः स्थ के मनन से नहीं है अन्यथा वे ऐसा नहीं कहते।

इस सम्बन्ध में पहली बात तो हम यह बता देना चाहते हैं कि षट्खण्डागम के रचयिता आचार्य प्रमुख भूतबलि पुष्पदन्त ने सर्वत्र जितना भी विवेचन किया है वह क्रम पद्धति से ही किया है। बिना किसी निश्चित क्रम विधान के ऐसे महान शास्त्रों की महत्व पूर्ण रचना नहीं बन सकती है। उन्होंने बीस प्ररूपणाओं का ही इन शास्त्रों में प्रतिपादन किया है। उनमें भी मार्गणा और गुणस्थान ये दो मुख्य हैं। जीव के स्वाभाविक और वैभाविक

भावों का विवेचन उन्होंने गुणस्थानों द्वारा बताया है और जीव की शरीर आदि बाह्य अवस्था गति इंद्रिय, काययोग और तदन्तर्गत पर्याप्ति आदि इन मार्गणाओं द्वारा बतायी है। और इन्हीं मार्गणा और गुणस्थानों का आधाराधेय सम्बन्ध से परस्पर समन्वय किया है। बस इसी क्रम से सामान्य विशेष रूप से सर्वत्र विवेचन उन परम वीतरागी अंगैकदेश ज्ञानी महर्षियों ने किया है।

अब विचार यह कर लेना चाहिये कि चौदह मार्गणाओं में द्रव्यवेद कहां पर आया है सो आपकी विद्वान बतावें? नामोल्लेख से द्रव्यवेद का वर्णन चौदह मार्गणाओं में कहीं भी नहीं आया है। यदि यह कहा जाय कि वेद मार्गणा तो आई है उसमें द्रव्यवेद का वर्णन क्यों नहीं किया गया? तो इसके उत्तर में यह समझ लेना चाहिये कि वेद मार्गणा नोकषाय पुंवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद के उदय से होती है जैसा कि सर्वत्र वर्णन है। उसमें द्रव्यवेद की कोई विवक्षा ही नहीं है। अतः इन ग्रन्थों में भाववेद की विवक्षा और उसका उल्लेख तो मिलता है द्रव्यवेद का उल्लेख और विवक्षा कहने का मार्गणाओं में कोई विधान नहीं है। अतः क्रमबद्ध विवेचन से बाहर होने से सूत्रों में उसका उल्लेख आचार्यों ने गुणस्थानों में घटित नहीं किया है; किन्तु द्रव्यवेद से होने वाली व्यवस्था और उस व्यवस्था से सम्बन्ध रखने वाले गुणस्थानों को आचार्यों ने छोड़ दिया है सो बात भी नहीं है, द्रव्यवेद का स्वरूप गति में, इन्द्रियों में, काय में, योग में और पर्याप्ति में

पा जाता है।

इसी प्रकार नामकर्म के भेदों में भी द्रव्यवेदों का उल्लेख द्रव्यवेद के नाम से नहीं है परन्तु नामकर्म के आंगोपांग, निर्माण, शरीर इनके विशिष्ट भेदों और उनके उदय में होने वाली नोकर्माण वर्गणाओं से होने वाली शरीर रचना में द्रव्य-वेद गर्भित होते हैं। इसलिये द्रव्यवेदों का स्वतन्त्र उल्लेख मार्गणाओं के क्रम विधान में नहीं आने से नहीं किया है। परन्तु गति, इंद्रिय, काय और योग मार्गणाओं के अन्तर्गत द्रव्यवेद आ जाता है।

इन षटखण्डागम और गोम्मटसार शास्त्रों में जो गुणस्थानों का समन्वय किया गया है वह गति आदि मार्गणाओं के द्वारा जीवों में द्रव्य शरीरों में ही किया गया है। और द्रव्य शरीर द्रव्य स्त्री पुरुषों के रूप में ही पाया जाता है अतः द्रव्यवेद का ग्रहण अवश्यंभावी स्वतः हो जाता है।

यदि द्रव्यवेदों अथवा द्रव्यशरीरों का उदयभेद विवक्षित नहीं हो तो फिर गुणस्थानों की नियत मर्यादा अमुक गति में, अमुक योग और अमुक पर्याप्ति अपर्याप्ति में इतने गुणस्थान होते हैं अथवा अमुक गुणस्थान अमुक गति में, अमुक योग में, अमुक अवस्था (पर्याप्त अपर्याप्त) में नहीं होते हैं यह बात कैसे सिद्ध हो सकती है? गुणस्थानों का समन्वय द्रव्य शरीरों को लेकर ही गत्यादि के आधार से कहा गया है इसलिये द्रव्यवेदों का ग्रहण बिना उनके उल्लेख किये गति और शरीर सम्बन्ध से हो ही

जाता है।

इसी का खुलासा हम गोम्मटसार की वेद मार्गणा की कुछ पंक्तियों से यहां कर देते हैं—

पुंसित्थिसंढवेदोदयेण पुरिसित्थि संढओ भावे।
णामोदयेण दव्वे पाएण समा कहिं विसमा॥

(गो० जी० गाथा २७१ पृ० ५९१ टीका)

अर्थ—पुरुष स्त्री नपुंसकवेद के उदय से पुरुष स्त्री नपुंसकभाव होता है। और नामकर्म के उदय से पुरुष स्त्री नपुंसक ये द्रव्यवेद होते हैं। प्रायः ये भाववेद और द्रव्यवेद समान होते हैं अर्थात् जो द्रव्यवेद होता है वही भाववेद होता है और कहीं २ पर विषम भी होते हैं। द्रव्यवेद दूसरा और भाववेद दूसरा ऐसा भी होता है।

इस ऊपर की गाथा में ही द्रव्यवेद का स्पष्ट उल्लेख आ गया है। भावपक्षी विद्वानों का यह कहना कि सर्वत्र भाववेद का ही वर्णन है इस मूल ग्रन्थ से सर्वथा बाधित हो जाता है। इसी गाथा की संस्कृत टीका इस प्रकार है।

पुरुषस्त्रीषंढाख्यत्रिवेदानां चारित्रमोहभेदनोकषायप्रकृतीनां उदयेन भावे चित्परिणामे यथासंख्यं पुरुषः स्त्री षंढश्च जीवो भवति। निर्माणनामकर्मोदययुक्तांगोपांगनामकर्मविशेषोदयेन द्रव्ये पुद्गलद्रव्यपर्यायविशेषे पुरुषः स्त्री षंढश्च भवति।

इन पंक्तियों में भाववेद द्रव्यवेद दोनों का खुलासा कर दिया गया है वह इस रूप में किया गया है कि पुंवेद स्त्रीवेद और

नपुंसकवेद रूप चारित्र मोहनीय के भेद स्वरूप नोकषाय कर्म के उदय में जो पुरुष की नपुंसकरूप आत्मा के भाव होते हैं उन्हीं को पुंवेद स्त्रीवेद नपुंसकवेद कहा जाता है। यह तो भाववेद का कथन है। द्रव्यवेद का इस प्रकार है—निर्माण नामकर्म के उदय युक्त आंगोपांग नामकर्म विशेष के उदय से पुद्गल पर्याय विशेष जो द्रव्य शरीर है वही पुरुष की नपुंसक द्रव्यवेद रूप कहलाता है।

यह तीनों का स्वरूप द्रव्य भाववेद रूप से कहा गया है प्रत्येक का इस प्रकार है—

पुंवेदोदयेन स्त्रियामभिलाषरूपमैथुनसंज्ञाक्रांतो जीवः भावपुरुषो भवति। पुंवेदोदयेन निर्माणनामकर्मोदय—युक्तांगोपांग-नामकर्मोदयवशेन श्मश्रुकूर्चशिश्नादि-लिंगांकित-शरीरविशिष्टो जीवो भवप्रथमसमयमादिं कृत्वा तद्भवचरम-समयपर्यंतं द्रव्यपुरुषो भवति।

अर्थात्—पुरुष वेद कर्म के उदयसे निर्माण नाम कर्म के उदय से युक्त आंगोपांग नाम कर्मोदय के वशसे जो जीव का मूंछ दाढ़ी लिंगादिक चिन्ह सहित द्रव्यशरीर है वही द्रव्यपुरुष कहा जाता है और वह द्रव्यपुरुष जन्मसे लेकर मरण पर्यन्त तक रहता है।

इसी प्रकार भावस्त्री द्रव्यस्त्री, भावनपुंसक द्रव्यनपुंसकके भिन्न भिन्न लक्षण गोम्मटसारकार ने और टीकाकार ने इसी प्रकरण में बताये हैं परन्तु लेख बढ़नेके भय से एक पुरुषवेद का ही भाव और द्रव्यवेद हमने यहां उद्धृत किया है।

इससे यह सिद्ध होता है कि द्रव्यवेद कोई शरीर से भिन्न पदार्थ नहीं है। जो शरीरनामकर्म आंगोपांग नामकर्म निर्माण कर्म आदि के उदय से जीव के शरीर की रचना होती है जिसमें गतिकर्म का उदय भी प्रधान कारण है। वही द्रव्यशरीर जीव का द्रव्यवेद कहा जाता है।

अतः गति मार्गणा में औदारिक काय योग और पर्याप्त के साथ जहां गुणस्थानों का समन्वय किया जाता है वहां वह द्रव्य-शरीर अथवा द्रव्यवेद के साथ है ऐसा समझना चाहिये। परन्तु जैसे भाववेद का उल्लेख है वैसे द्रव्यवेद का नहीं है। क्योंकि वेद मार्गणा में नोकषायोदय रहता है। द्रव्यवेद किसी मार्गणा में नहीं है और वह किसी नाम कर्म में भी नहीं है। अत एव उसकी विवक्षा शास्त्रकारों ने नहीं की है। परन्तु उसका ग्रहण, सम्बन्ध और समन्वय अविनाभावी है।

षटखण्डागम और गोम्मटसार में द्रव्यवेद के कथन को समझने के लिये यही एक अन्तस्तत्व अथवा कुञ्जी है।

इसके सिवा द्रव्यवेद का खुलासा वर्णन भी गोम्मटसार मूल में है यह बात भी हम बता चुके हैं। एक दो उद्धरण यहां पर भी देते हैं—

थी पुं संड सरीरं ताणं णोकम्म दव्वकम्मं तु।

(गो० क० गा० ७६ पृष्ठ ६७)

स्त्रीवेद का नोकर्म स्त्रीद्रव्य शरीर है, पुरुषवेद का नोकर्म द्रव्य पुरुष शरीर है। नपुंसकवेद का नोकर्म नपुंसक द्रव्यशरीर है।

यह गोम्मटसार मूल गाथा द्रव्यवेद का विधान करती है।

अन्तिमतिय संहणणस्सुदश्रो पुण कम्मभूमिमहिलाणं।

(गो० क० गा० ३२ पृष्ठ २५ टी०)

कर्मभूमि की महिलाओं के (द्रव्यस्त्रियों के) अन्त के तीन संहनन ही होते हैं। यह भी द्रव्यस्त्री का स्पष्ट कथन है। मूल ग्रन्थमें है। और भी देखिये—

आहारकायजोगा चउवण्णं होंति एक समयम्मि।

आहारमिस्सजोगा सत्तावीसा दु उक्कस्सं॥

(गो० जी० गा० २७० पृष्ठ ५८६)

एक समय में उत्कृष्ट रूप में ५४ आहारक काय योग वाले हो सकते हैं तथा आहारक मिश्रकाय वालों की संख्या एक समय में २७ होती है।

यह कथन छठे गुणस्थानवर्ती आहारक काययोग धारण करने वाले द्रव्यशरीर धारक मुनियों का है। इस गाथामें भाव वेदकी गन्धभी नहीं केवल द्रव्यशरीर का ही कथन है। और भी-

णेरयिया खलु संढा णरतिरिये तिण्णि होंति संमुच्छा।

संढा सुरभोगभुमा पुरुसिच्छीवेदगा चेव॥

(गो० जी० गा० ९३ पृष्ठ २१४ टी०)

नारकी सब नपुंसक ही होते हैं। मनुष्य तिर्यंचों में तीनों वेद होते हैं। सम्मूर्छन जीव नपुंसक ही होते हैं। देव और भोगभूमि के जीव स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी ही होते हैं। यहां पर द्रव्यवेद और भाववेद दोनों लिये गये हैं। टीका में स्पष्ट लिखा

है कि 'द्रव्यतो भावतश्च'। अर्थात कर्मभूमि के मनुष्य तिर्यचोंको छोड़ कर बाकी के जीवोंके द्रव्यवेद भाववेद एक ही है। द्रव्यवेद के लिये तो टीका प्रमाण है परन्तु केवल भाववेद के लिये भाव-वादियों के पास क्या प्रमाण है ? और भी—

साहिय सहस्समेकं बारं कोसूणमेक मेक्कंच।
जोयण सहस्सदीहं पम्मे वियले महामच्छे॥

(गो० जी० गा० ६५ पृ २१७ टी०)

कमल, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय महामत्स्य इन जीवों के शरीर की अवगाहना से कुछ अधिक एक हजार योजन की अवगाहना कमल की, द्वीन्द्रियशंख की बारह योजन, चींटियों की त्रीन्द्रियों में तीन कोस की, चौइन्द्रिय में भ्रमर की एक योजन पञ्चेन्द्रियों में महामत्स्य की अवगाहना एक हजार योजन लम्बी है। इसी प्रकार आगे अन्य जीवों के शरीर की अवगाहना बताई गई है। यह सब द्रव्य शरीर का ही निरूपण है। भाव का कुछ नहीं है। और भी—

पोतजरायुजअण्डजजीवाणं गब्भदेवणिरयाणम्।
उववादं सेसाणं समुच्छणयं तु णिद्दिट्ठम्॥

(गो० जी० गा० ८४)

इस गाथामें स्वेदज, जरायुज अण्डज, देवनारकी, और बाकी समस्त संसारी जीवों का गर्भ, उपपाद और सम्मूर्च्छन जन्म बताया गया है। यह सब द्रव्यशरीर का ही वर्णन है। भाव का नहीं है। इसी प्रकार—

कुम्भुएणस जोणीये इस गाथा में किस योनि में कौन जीव पैदा होते हैं यह बताया गया है ये सब कथन द्रव्यवेद की मुख्यता रखता है।

पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणम्।

(गो० जीव० गा० १५६)

इस गाथा में यह बताया गया है कि जितनी पर्याप्त मनुष्यों की राशि है उसमें तीन चौथाई द्रव्यस्त्रियां हैं। टीकाकार ने मानुषी का अर्थ द्रव्यस्त्री ही किया है। लिखा है 'मानुषीणां द्रव्यस्त्रीणामिति।' इससे बहुत स्पष्ट है कि गोम्मटसार मूल में द्रव्यवेद का कथन भी है।

इसी प्रकार प्रत्येक मार्गणाओं के द्रव्य शरीर धारी जीवों की संख्या बताई गई है। इन सब प्रकरणों के कथन से यह बात भले प्रकार सिद्ध हो जाती है। कि गोम्मटसार तथा षटखण्डागम में द्रव्य भाव दोनों का ही कथन है। केवल भाववेद का ही कथन बताना ग्रन्थ के एक भाग का ही कहा जायगा। अथवा वह कथन ग्रन्थ विरुद्ध ठहरेगा। क्योंकि उक्त दोनों में द्रव्यवेद की ओर भाववेद की चर्चा व विधान है।

गोम्मटसार इसी सिद्धांत शास्त्र का संक्षिप्त सार है।

गोम्मटसार ग्रन्थ की भूमिका में यह बात लिखी हुई है कि जब चामुण्डराय आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती के चरण निकट पहुंचे थे तब वे आचार्य महाराज सिद्धांत शास्त्र का स्वाध्याय कर रहे थे, उन्होंने चामुण्डराय को देखते ही वह सिद्धांत शास्त्र

बन्द कर लिया जब चामुण्डराय ने पूछा कि महाराज ऐसा क्यों किया मैं भी तो इस शास्त्र के रहस्य को जानना चाहता हूं तब आचार्य महाराज ने कहा कि इस सिद्धांत शास्त्र को वीतराग महर्षि ही पढ़ सकते है गृहस्थों को इसके पढ़ने का अधिकार नहीं है। जब चामुण्डराय की अभिलाषा उसके विषय को जानने की हुई तो सिद्धांत चक्रवर्ती आचार्य नेमिचन्द्र ने उन सिद्धांत शास्त्र का संक्षिप्त सार लेकर गोम्मटसार ग्रन्थ की रचना की। 'गोम्मट' चामुण्डराय का अपर नाम है। उस गोम्मट के लिये जो सार सो गोम्मटसार ऐसा यथानुगुण नाम भी उन्होंने रख दिया। इसलिये जब गोम्मटसार ग्रन्थ उसी षटखण्डागम सिद्धांत का सार है तब गोम्मटसार में तो सर्वत्र द्रव्यवेद एवं द्रव्य शरीरों का वर्णन पाया जाय परन्तु जिस सिद्धांत शास्त्र से यह सार लिया गया है उसमें द्रव्यवेद का कहीं भी कथन नहीं बताया जाय और वह ग्रन्थांतरों से आना जाय यह बात किसी बुद्धिमान की समझ में आने योग्य नहीं है।

—टीकाकार और टीकाग्रन्थों पर असह्य आरोप—

इन भावपक्षी विद्वानों के लेखों में यह बात भी हमारे देखने में आई है, कि मूल ग्रन्थों में द्रव्यवेद और भाववेद ये दो भेद नहीं मिलते हैं, जब से स्त्री मुक्ति का विधान द्रव्यकी परक किया जाने लगा है तब से टीका ग्रन्थों में या उत्तर कालवर्ती ग्रन्थों में द्रव्यवेदों का भी उल्लेख किया जाने लगा है। यह बात पं० फूलचन्द जी सिद्धांत शास्त्री महोदय ने लिखी है। सोनी जी

महोदय तो यहां तक लिखते हैं कि "द्रव्यस्त्रियां अधिक हैं इनकी मुख्यता से गोम्मटसार के टीकाकारों ने 'द्रव्यस्त्रीणां वा द्रव्य—मनुष्यस्त्रीणां' ऐसा अर्थ लिख दिया है एतावता गोम्मटसार का प्रकरण उक्त गाथा—

पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीण परिमाणं।

के होते हुये भी द्रव्य प्रकरण नहीं है. और इस वजह से नहीं धवला का प्रकरण द्रव्य प्रकरण है।"

आगे सोनी जी का लिखना कितना अधिक और ग्रन्थ एवं टीका के विरुद्ध है इसे पढ़ लीजिये—

"गोम्मटसार मूल में भी मनुष्यणी पद है, सूत्र में भी मनुषिणी पद है, सूत्र के टीकाकार वीरसेन स्वामी मनुष्यणी को मानुषिणी ही लिखते हैं, द्रव्यस्त्री या द्रव्यमनुष्यणी नहीं लिखते, किन्तु गोम्मटसार के टीकाकार मनुषिणी को द्रव्यस्त्री द्रव्यमनुषिणी ऐसा लिखते हैं। यह न तो विरोध है और न हो इस एक शब्द के पीछे धवला का प्रकरण ही द्रव्य प्रकरण है।"

सोनी जी ने इन पंक्तियों को लिखकर मूल ग्रन्थों में और टीकाकारों में परस्पर विरोध दिखलाया है, इतना ही नहीं उन्होंने गोम्मटसार के टीकाकार को मूल ग्रन्थ से विरुद्ध टीका करने वाले ठहरा दिया है यह टीकाकार पर बहुत भद्दा, एवं असह्य आक्षेप है। सोनी जी विद्वान हैं उन्हें तो बहुत समझ कर मर्यादित बात कहना चाहिये। सोनी जी यहां तक लिखते हैं कि "टीकाकार के द्रव्यस्त्री इस एक शब्द के पीछे धवला का प्रकरण द्रव्य प्रकरण

नहीं हो सकता है !" उन्हें समझना चाहिये कि यह सिद्धांत है एक बात में ही तो उल्टा सीधा हो जाता है। द्रव्य की इस एक बात में ही तो द्रव्यस्त्रियों की साक्षात् मोक्ष प्राप्ति रुक जाती है। इस एक बात की परवा नहीं की जाय तो वे भी उसी पर्याय से मोक्ष जा सकती हैं ? आप भी तो 'सञ्जद' इस एक बात को ही रखना चाहते हैं। बस एक बात से ही तो द्रव्यस्त्री को मोक्ष सिद्ध हो सकती है। एक बात तो लम्बी है एक 'न' और एक अनुस्वार में भी उल्टा हो जाता है। फिर आप तो यहां तक भी लिखते हैं कि-

"गोम्मटसार का वेद मार्गणा नाम का प्रकरण भी द्रव्य—प्रकरण नहीं है वह भी भाव प्रकरण है गोम्मटसार में 'णामोदयेण दव्वे' इन सात अक्षरों के सिवा वेदों का सामान्य और विशेष स्वरूप भाववेदों से सम्बन्धित है" इन 'णामोदयेण दव्वे' सात अक्षरों का आपकी समझ में कोई मूल्य ही नहीं मालूम होता है। ये सात अक्षर मूल ग्रन्थ के हैं, टीका के ही नहीं है फिर भी आप आंख मीच कर बड़े साहस से कह रहे हैं कि गोम्मटसार सारा भाववेदों से ही सम्बन्धित है ? आपकी इस बात पर बहुत भारी आश्चर्य होता है मूल ग्रन्थ में आये हुय पदों को देखते हुये भी उन पर कोई विचार नहीं करना प्रत्युत उनसे विपरीत केवल भाववेद की ही एक बात समूचे ग्रन्थ में बताना और सात अक्षर मात्र कहकर उनके विधान का निषेध कर देना, हमारी समझ से ऐसी बात सोनी जी को शोभा नहीं देती है। ऐसा कहने से समस्त ग्रन्थ सरणि की अप्रमाणता एवं अमान्यता

ठहरती है। फिर इसी गोम्मटसार मूल ग्रन्थ में 'थी पुंसंढसरीरं' और 'कम्मभूमि महिलाणं' आदि अनेक विधान द्रव्यवेद के लिये स्पष्ट आये हैं, क्या उन सबों पर पानी फेर कर सोनी जी केवल भाववेद भाववेद ही गोम्मटसार भर में बताना चाहते हैं जो कि मूल ग्रन्थ से भी सर्वथा बाधित है ? वेद मार्गणा भाव प्रकरण है इसमें हमें कोई विरोध नहीं है परन्तु गोम्मटसार के कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने द्रव्यवेद का भी विधान गोम्मटसार में किया है। उन्होंने बहुत सा कथन द्रव्यवेद के आधार पर भी मार्गणाओं में किया है। यह ग्रन्थ से स्पष्ट है।

—असीम पक्षपात—

आगे चलकर सोनी जी स्वयं लिखते हैं –

"अतः समझ लीजिये धवला का और गोम्मटसार का प्रकरण एक ही है वह द्रव्य प्रकरण नहीं है दोनों के ही प्रकरण भाव-प्रकरण हैं। धवला में और गोम्मटसार टीकाओं में विरोध भी नहीं है।"

इन पंक्तियों से पाठक स्पष्ट रूप से समझ लेंगे कि यहां पर सोनी जी धवला टीका में और गोम्मटसार टीका में कोई विरोध नहीं बताते हैं। और दोनों का एक ही प्रकरण बताते हैं। परन्तु पाठकों को उनकी इस बात पर पूरा ध्यान देना चाहिये कि दोनों में भाव प्रकरण ही है, द्रव्य प्रकरण नहीं है तभी दोनों में कोई विरोध नहीं है। ऐसा वे कहते हैं। यदि द्रव्य प्रकरण गोम्मटसार में टीकाकार ने लिख दिया है या मानुषी का अर्थ

उन्होंने 'द्रव्यस्त्रीणां' आदि रूप से लिखा है तो गोम्मटसार के टीकाकार का कथन मूल गोम्मटसार से भी विरुद्ध है और धवला से भी विरुद्ध है। इस पक्षपात की भी कोई हद है? भाव प्रकरण मानने पर दोनों में और मूल में भी कोई विरोध नहीं किन्तु द्रव्य प्रकरण मानने पर पूरा विरोध। विचित्र ही पूर्वापर विरुद्ध साधन एवं समर्थन है:

परन्तु गोम्मटसार मूल में भी और उसकी टीका में भी द्रव्य-निरूपण एवं द्रव्यस्त्री आदि का विधान स्पष्ट लिखा है जैसा कि हम ऊपर उद्धरण देकर खुलासा कर चुके हैं। ऐसी अवस्था में सोनी जी के लेखानुसार मूल में भी षटखण्डागम से विरोध ठहरेगा। और टीकाकार का भी धवला से विरोध ठहरेगा। परन्तु षटखण्डागम गोम्मटसार और धवला टीका तथा गोम्मटसार टीका, इन सबों में कहीं कोई विरोध नहीं है, प्रकरणों में यथास्थान और यथासम्भव द्रव्यवेद और भाववेद का निरूपण भी सबों में है। धवलाकार ने यदि मानुषी का अर्थ मानुषी ही लिखा है और गोम्मटसार के टीकाकार ने मानुषी का अर्थ द्रव्यस्त्री भी लिखा है तो दोनों में कोई विरोध नहीं है। यदि धवलाकार उस प्रकरण में भाव मानुषी लिख देते या द्रव्य मानुषी का निषेध कर देते तब तो वास्तव में विरोध ठहरता। सो कहीं नहीं है। जहां जैसा प्रकरण है वहां वैसा द्रव्य या भाव लिखा गया है इसी प्रकार गोम्मटसार मूल में जहां द्रव्यस्त्री शब्द नहीं भी लिखा है और टीकाकार ने लिख दिया है तो भी प्रकरण गत वही अर्थ ठीक है। टीकाकार

ने मूल का स्पष्टीकरण ही किया है। यही समझना चाहिये। अपनी बात की सिद्धि के लिये महान् शास्त्रों में और इनके रचयिता सिद्धांत रहस्यज्ञ साधिकार टीकाकारों में विरोध बताना बहुत बड़ी भूल और सर्वथा अनुचित है।

आगे सोनी जी द्रव्यस्त्रियों की संख्या को स्वय स्वीकार भी करते हैं--

"तथा द्रव्यस्त्रियां अधिक हैं और भावस्त्रियां बहुत ही थोड़ी हैं इस बात को (पाहेण समा कहिं विसमा) यह गोम्मटसार की गाथा कहती है, इसलिये अधिक की मुख्यता को लेकर गोम्मट— सार के टीकाकारों ने द्रव्यस्त्रीणां या द्रव्यमनुष्यस्त्रीणां ऐसा अर्थ लिख दिया है, एतावता गोम्मटसार का प्रकरण उक्त गाथा के होते हुये भी द्रव्य प्रकरण नहीं है।"

इन पंक्तियों द्वारा मानुषियों की संख्या द्रव्यस्त्रियों की संख्या है ऐसा सोनी जी ने स्वीकार भी किया है और उसके लिये गोम्मटसार मूल गाथा का (पाहेण समा कहिं विसमा) यह हेतु भी दिया है और उसी के मूल के अनुसार टीकाकार ने द्रव्यकी द्रव्यमनुष्यकी लिखा है यह भी ठीक बताया है। इतनी सप्रमाण और सहेतुक द्रव्यकी की मान्यता को प्रगट करते हुये भी सोनी जी स्वयं भी लिखते हैं कि "एतावता गोम्मटसार का प्रकरण उक्त गाथा के होते हुये भी द्रव्य प्रकरण नहीं है" हमको उनके इस गहरे पक्षपात पूर्ण परस्पर विरुद्ध कथन पर आश्चर्य होता है। क्योंकि प० जी, जब गाथा बता रही है और उसी के अनुसार

टीकाकार ने द्रव्यको या द्रव्यमनुष्यणी लिखा है तो फिर भी उसके होते हुये आप उस प्रकरण को द्रव्य प्रकरण क्यों नहीं मानोगे ? क्या यह कोई बच्चों की बात चीत है कि 'हम तो नहीं मानेंगे' यह शास्त्रों के प्रमाण की बात है। इसी पर द्रव्यस्त्री को मोक्ष का निषेध एवं वस्तु निर्णय होता है। इसी की मान्यता में सम्यग्दर्शन की आत्मस्थ गवेषणा की जाती है। इसी की मान्यता अमान्यता में मुक्ति व संसार कारणों का आस्रव होता है।

—टीकाकारों की प्रामाणिकता और महत्ता—

जिन टीकाकारों ने षट्खण्डागम सिद्धांत शास्त्र, गोम्मटसार जीवकांड तथा गोम्मटसार कर्मकांड जैसे सिद्धांत रहस्य से परिपूर्ण जीवस्थान, कर्मप्रकृति प्ररूपक महान गम्भीर एवं अत्यंत गहन ग्रन्थों की साधिकार टीकायें की हैं उनकी प्रामाणिकता और महत्ता कितनी और कैसी है इसी बात का दिग्दर्शन करा देना भी आवश्यक हो गया है। भगवद्वीरसेन स्वामी ने षटखण्डागम सूत्रों की टीका की है उनकी प्रामाणिकता और महत्ता अगाध है, उनके विषय में सोनी जी का कोई भी आक्षेप नहीं है। परन्तु गोम्मटसार के टीकाकारों पर अवश्य आक्षेप है, इसलिये उनके विषय में थोड़ा सा दिग्दर्शन यहां कराया जाता है। गोम्मटसार के चार टीकाकार हैं— पहले टीकाकार श्रीमत् चामुण्डराय जी, दूसरे केशववर्णी, तीसरे आचार्य अभयचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती, और चौथे पाण्डतप्रवर टोडरमल जी।

चामुण्डराय जी आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती के

साक्षात् पट्टशिष्य थे। आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने जब गोम्मटसार की रचना की थी तभी उनके सामने ही उनके शिष्य चामुंडराय ने इस गोम्मटसार की टीका कर्णाटक वृत्ति रची थी, यह टीका उन्होंने अपने गुरु मूल ग्रन्थ गोम्मटसार के रचयिता आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती को दिखाकर उनसे पास भी करा ली होगी यह निश्चित है। तभी तो गोम्मटसार की रचना के अंत में आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने यह गाथा लिखी है।

गोमट्टसुत्तलिहणे गोम्मटरायेण जा कया देसी
सो राओ चिरकालं णामेण य वीरमत्तंडो ॥

(गो० क० गा० ६७२)

अर्थ—गोम्मटसार ग्रन्थ के गाथा सूत्र लिखने के समय जिस गोम्मटराय ने (चामुण्डराय ने) देशी भाषा कर्णाटक वृति बनाई है वह वीर मार्तण्ड नाम से प्रसिद्ध चामुण्डराय चिरकाल तक जयवंत रहो।

यह ६७२वीं गाथा गोम्मटसार की सबसे आखीर की गाथा है इसमें चामुंडराय की टीका का उल्लेख कर आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने उन्हें वीर मार्तण्ड नाम से पुकारकर चिरकाल जीने का भावपूर्ण आशीर्वाद दिया है। इससे पहली पांच गाथा-ओं में भी आचार्य महाराज ने चामुण्डराय के महान गुणों की और उनके समुद्र तुल्य ज्ञान की भूरि २ प्रशंसा की है। इससे यह बात सहज हर एक की समझ में आने योग्य है कि आचार्य

नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती ने चामुण्डराय की समस्त टीका को अवश्य ध्यान से देखा होगा। और यह भी परिचय मिलता है कि जितना मूल ग्रन्थ आचार्य महाराज बनाते होंगे उतनी ही उसकी टीका चामुण्डराय बना देते होंगे। और वह प्रतिदिन आचार्य महाराज की दृष्टि में आती होगी। इसका प्रमाण यही है कि आचार्य महाराज ने उस कर्णाटक वृत्ति टीका को देखकर ही गोम्मटसार की समाप्ति में चामुण्डराय की उस टीका का उल्लेख कर आशीर्वाद दिया है इससे बहुत स्पष्ट हो जाता है कि मूल ग्रन्थ का जो अभिप्राय है उसी को चामुण्डराय ने खुलासा किया है। यदि उनकी टीका मूल ग्रन्थ से विरुद्ध होती और आचार्य महाराज का अभिप्राय मानुषी पद का अर्थ भाविस्त्री होता और चामुंडराय जी, टीका में द्रव्यस्त्री करते तो आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती उसे अवश्य सुधरवा देते। इतनी ही नहीं किन्तु आचार्य महाराज से निर्णय करके ही उन्होंने हर एक बात लिखी होगी। क्योंकि चामुंडराय जी कोई स्वतन्त्र टीकाकार नहीं थे किन्तु आ० महाराज के शिष्य थे अतः जो मूलग्रन्थ है टीका उसी रूप में टीका है। तथा उस टीका से केशववर्णी ने संस्कृत टीका बनाई है। जब चामुण्डराय की कर्णाटकीवृत्ति का ही संस्कृत टीका (केशववर्णीकृत) अनुवाद है तब उसकी भी वही प्रामाणिकता है जो चामुंडराय की टीका की है। तीसरी संस्कृत टीका मन्द प्रबोधिनी नाम की है वह श्रीमत् अभयचन्द्र सिद्धांत चक्रवर्ती की बनाई हुई है। इस टीका के रचयिता श्री० अभयचन्द्र जी सिद्धांत

चक्रवर्ती थे और उनकी टीका भी केशववर्णी की टीका से मिलती है। टीकाकारों के इस परिचय से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मूल ग्रन्थ और उसकी टीका में कोई अन्तर नहीं है, चौथी टीका पण्डित प्रवर टोडरमल जी की हिन्दी अनुवाद रूप है। उन्होंने संस्कृत टीका का ही हिन्दी अनुवाद किया है इसलिये उसमें भी कोई विरोध सम्भव नहीं है। इसके सिवा एक बात यह भी है कि ये सभी टीकाकार महा विद्वान थे। सिद्धांत शास्त्रों के पूर्ण पारङ्गत थे। और जिन शास्त्रों की उन्होंने टीका रची है उनके अन्तस्तत्व को मनन कर चुके थे तभी उनकी टीका करने के वे अधिकारी बने थे। जहां मानुषी शब्द का अर्थ भाववेद है वहां भावरूप और जहां उसका अर्थ द्रव्यवेद है वहां द्रव्यस्त्री अर्थ उन्होंने किया है। इसलिये मूल ग्रन्थ में केवल मानुषी पद होने पर भी स्पष्टता के लिये टीकाकारों ने द्रव्यस्त्री अर्थ समझ कर ही किया है। वह टीकाकारों का किया हुआ नहीं समझकर मूल ग्रन्थ का ही समझना चाहिये। 'वक्तुः प्रमाणाद्वचनप्रमाणम्' इस नीति पर सोनी जी ध्यान देंगे ऐसी आशा है। टीकाकारों की निजी कल्पना कहने वाले एवं उनकी भूल बताने वाले दूसरे विद्वान भी इस विवेचन पर लक्ष्य देंगे। "टीकाकारों ने ऐसा लिखा है मूलमें यह बात नहीं है" इस प्रकार की बातें हमें सहन नहीं हुई हैं उस प्रकार के कथन से टीका ग्रन्थों में श्रद्धा की कमी एवं उलटी समझ हो सकती है इसी लिये इतना लिखना हमने आवश्यक समझा।

सोनी जी की पूर्वापर विरुद्ध बातें

९३वें सूत्रमें संजदपदका अभाव सोनीजी स्वयं बताते हैं

पं० पन्नालाल जी सोनी आज अपने लम्बे २ लेखों में समूचे षटखण्डागम सिद्धान्त शास्त्र में केवल भाववेद का ही कथन बता रहे हैं। द्रव्यवेद का उसमें कहींभी वर्णन नहीं है ऐसा वे बार बार लिख रहे हैं।

इसी प्रकार वे आलापाधिकार में भी केवल भाववेद का ही कथन बताते हैं।

आज वे धवला सिद्धान्त के ९३वें सूत्र को भाववेद विधायक बताते हुये उसमें "संयत" शब्द का होना आवश्यक बता रहे हैं।

परन्तु आज से केवल कुछ मास पहिले उपर्युक्त बातों के सर्वथा विपरीत उन बातों की सप्रमाण पुष्टि वे स्वयं कर चुके हैं जिनका विधान हम अपने इस लेख में कर रहे हैं। आश्चर्य इस बात का है कि जिन प्रमाणों से वे आज भाववेद की पुष्टि कर रहे हैं, उन्हीं प्रमाणों से पहले वे द्रव्यवेद की पुष्टि कर चुके हैं। ऐसी दशा में हम नहीं समझे कि आगम ही बदल गया है या सोनी जी को मतिभ्रम हो चुका है। अन्यथा उनके लेखों में पूर्वापर विरोध एवं स्ववचन बाधितपना किस प्रकार आता ? जो भी हो।

यहां पर सोनी जी के उन उद्धरणों को हम देते हैं जिन्हें उन्होंने दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण पुस्तक के द्वितीय भाग में लिखा है।

सोनी जी ने धवल सिद्धान्त के ९२ और ९३ वें सूत्रों को लिखकर उनका अर्थ भी लिखा है, उस अर्थ के नीचे वे लिखते हैं कि—

"अब विचारणीय बात यहां पर यह है कि वे मनुष्यिणियां द्रव्य मनुष्यिणियां हैं या भाव मनुष्यिणियां। भावमनुष्यिणियां तो हैं नहीं। क्योंकि भाव तो वेदों की अपेक्षा से है, उनका यहां पर्याप्तता अपर्याप्तता में कोई अधिकार नहीं है। क्योंकि भाव-वेदों में पर्याप्तता अपर्याप्तता ये दो भेद हैं नहीं। जिस तरह कि क्रोधादि कषायों में पर्याप्तता अपर्याप्तता ये दो भेद नहीं हैं। इस लिये स्पष्ट होता है कि ये द्रव्य मनुष्यिणियां हैं। आदि के दो गुणस्थानों में पर्याप्त और अपर्याप्त आगे के तीन गुणस्थानों में पर्याप्तक, इस तरह पांच गुणस्थान कहे गये हैं। इससे भी स्पष्ट होता है कि ये द्रव्यमनुष्यिणियां हैं। भावमनुष्यिणियां होतीं तो उनके नौ या चौदह गुणस्थान कहे जाते। किन्तु गुणस्थान पांच ही कहे गये हैं।

(दि० जैन सिद्धान्त दर्पण द्वितीय भाग पृष्ठ १५०)

पाठकगण सोनीजी के ९२ और ९३ सूत्रों के अर्थ को ध्यान से पढ़ लेवें। उन्होंने सहेतुक इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि षटखण्डागम के सूत्र ९२ और ९३ वें जो मानुषियां हैं वे द्रव्य-स्त्रियां ही हैं। और उनके पांच ही गुणस्थान होते हैं। आज वे उन्हीं प्रमाणोंसे ९२-९३ सूत्रोंको भाववेद का विधायक बताते हुये उन सूत्रों में कही गई मानुषिणियों को भाव—मनुषिणि/

कह रहे हैं। और उनके चौदह गुणस्थान बता रहे हैं। और द्रव्यस्त्री के पांच गुणस्थानों को ग्रन्थान्तरों से जान लेना चाहिये ऐसा लिख रहे हैं। ऊपर अपने लेखमें वे पांच गुणस्थान इसी ९३ वें सूत्र में सुसिद्ध बता रहे हैं। सोनी जी कोई छात्र तो नहीं हैं जो परिपक्व नहीं किन्तु एक प्रौढ़ विद्वान हैं। परन्तु वे पहले लेखों में उसी बात की पुष्टि कर रहे हैं जिसको हमने इस ट्रैक्ट में दी है आज कुछ मास के पीछे उनकी समझ में उस कथन से सर्वथा विपरीत परिवर्तन देखकर हमें ही क्या सभी पाठकों को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहेगा। अस्तु

आगे वे लिखते हैं—

"वेदों में तो सर्वत्र भाववेद की अपेक्षा से कथन किया है परन्तु मनुषिणी में कहीं द्रव्य की अपेक्षा और कहीं भाववेद की अपेक्षा कथन है ऐसे अवसर पर सन्देह हो जाता है, इस सन्देह को दूर करने के लिये व्याख्यान से, विवरण से, टीका से विशेष-प्रतिपत्ति (निर्णय) होता है। तदनुसार टीका ग्रन्थों से और अन्य ग्रन्थों से सन्देह दूर कर लिया जाता है। टीका ग्रन्थों में स्पष्ट कहा गया है कि मानुषिणी के भावलिंग की अपेक्षा चौदह गुणस्थान होते हैं और द्रव्यलिंग की अपेक्षा से आदि के पांच गुणस्थान होते हैं।"

इस कथन से सोनी जी टीका ग्रन्थों के कथन को मूल ग्रन्थ के अनुसार ही प्रमाण बता रहे हैं परन्तु आज वे टीका ग्रन्थों को मूल ग्रन्थ के अनुकूल नहीं बताते हैं।

आगे और भी पढ़िये—

"इसके ऊपर के (यहां पर ६३वां सूत्र सोनी जी ने लिखा है) नं० ६२वें सूत्र में मणुसिणीसु शब्द है, उसकी अनुवृत्ति नं० ६३ सूत्र में आती है, इस मनुषिणी शब्द को यदि आप द्रव्यस्त्री मानें तो बड़ी खुशी की बात होगी। क्योंकि यहां मानुषिणी के पांच ही गुणस्थान कहे हैं। पांच गुणस्थान वाली मानुषिणी द्रव्यस्त्री होती है।"

(दिगम्बर जैन सिद्धांत दर्पण पृ० १५३)

ऊपर की पंक्तियों से स्पष्ट है कि सोनी जी ६३वें सूत्रमें संजद पद नहीं बताते हैं और उसको द्रव्यस्त्री का ही प्रतिपादक बताते हैं और उस सूत्र को पांच गुणस्थानों का विधायक ही बताते हैं। आज वे ६३वें सूत्र को भावस्त्री का कथन करने वाला बता रहे हैं। इस पूर्वापर विरुद्ध कथन का और इस प्रकार की समझदारी का भी कुछ ठिकाना है?

पाठकगण सोच लें कि प्रोफेसर हीरालालजी को ही मतिभ्रम नहीं है किन्तु सोनी जी जैसे विद्वानों को भी मतिभ्रम होगया है। अन्यथा पूर्वापर विरुद्ध बातें आगम के विषय में क्यों?

आगे सोनीजी संख्याको भी द्रव्यस्त्रियों की संख्या बताते हैं—

"पज्जत्तमणुस्साणं तिचउत्थो माणुसीणपरिमाणं"

इस गाथा को देते हुए सोनी जी लिखते हैं—

"यह नं० १५८ की गाथा का पूर्वांश है इसमें आये हुवे माणुसीण शब्द का अर्थ केशववर्णी की कन्नड़ टीका के अनुसार

संस्कृत टीकाकार नेमिचन्द्र "द्रव्यस्त्रीणां" और केशववर्णी के गुरु अभयचन्द्र सैद्धान्ती 'द्रव्यमनुष्य स्त्रीणां' ऐसा करते हैं"

इसीप्रकार—'तिगुणा सत्तगुणा वा सव्वट्ठा माणुसी पमाणा-दो।' इस गाथा को लेकर सोनी जी लिखते हैं कि—

"इस गाथा की टीका में मानुषी शब्द का अर्थ मनुष्यकी किया गया है यह मनुष्य स्त्री या मानुषी शब्द द्रव्य की है। क्योंकि सर्वार्थसिद्धि के देवोंकी संख्या द्रव्यमनुष्य की की संख्या से तिगुनी अथवा सातगुनी है।"

(दि० जैन सिद्धान्त दर्पण पृष्ठ १५०)

यहां पर सोनी जी ने यह सब संख्या द्रव्यस्त्रियों की स्वयं स्वीकार की है। और गोम्मटसार को भी द्रव्यवेद का कथन करने वाला स्वीकार किया है। टीका को भी पूर्ण स्वीकार किया है। किन्तु आज वे उक्त कथन से सर्वथा विपरीत कह रहे हैं।

ऊपर के कथन में सोनी जी ने केशववर्णी की कन्नड़ टीका के अनुसार संस्कृत टीकाकार नेमिचन्द्र को लिखा है परन्तु कन्नड़ टीका के रचयिता केशववर्णी नहीं हैं किन्तु आ० चामुण्डराय जी हैं और उसी कन्नड़ टीका के अनुसार संस्कृत टीका के रचयिता केशववर्णी हैं। जैसा कि गोम्मटसार—

गोमट्टसुत्तलिहणे गोमटरायेण जा कया देसी।
सो राओ चिरकालं णामेण य वीर मत्तंडो॥

इस गाथा से स्पष्ट है। सोनी जी ने केशववर्णी को कन्नड़ टीका का रचयिता बताया है वह गलत है। अस्तु।

आगे सोनी जी आलापाधिकार की-'मूलोघं मणुसतिये' इस गाथा को लिख कर कहते हैं—

"योनिमत्संयते पर्याप्तालाप एव" योनिमत् असंयत में एक पर्याप्तालाप ही होता है। यहां योनिमत् का अर्थ द्रव्यमानुषी और भावमानुषी दोनों हैं।"

(दि० जैन सि० दर्पण द्वि० भाग पृ० १५६)

इस लेखमें सोनी जी आलापाधिकार को द्रव्यकी और भाव की दोनों का निरूपक स्वीकार करते हैं। और यही बात हमने लिखी है कि आलापाधिकार में यथा सम्भव द्रव्यवेद भाववेद दोनों लिये जाते हैं। परन्तु आज वे पक्ष-मोह में इतने गहरे सन गये हैं कि आलापाधिकार को केवल भाव का ही निरूपक बता रहे हैं। आगे और पढ़िये—

सोनी जी षटखण्डागम के "मणुस्सा तिवेदा" इस १०८ वें सूत्र को लिख कर लिखते हैं कि—

"इस सूत्र में द्रव्यमनुष्य तीन वेद वाले कहे गये हैं"

"सूत्र नं० १०८ में मणुस्सा पद द्रव्यमनुष्यका सूचक है"

(पृ० नं० १४९)

इस लेख में सोनी जी को षटखण्डागम के मूल सूत्रों में भी द्रव्यवेद के दर्शन हो रहे हैं परन्तु आज के नेत्रों में उन्हें समूचे षटखण्डागम में केवल भाववेद ही दीख रहा है पहले लेख में वे यह खुलासा लिख रहे हैं कि—

"मणुस्सा का अर्थ भाव मनुष्य नहीं है" (पृष्ठ १४९)

इस पंक्तिसे वे षटखण्डागम में भाववेद का स्वयं खण्डन भी कर रहे हैं। इसके आगे दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण द्वितीय भाग के पृष्ठ १७८ और १७६ वें उन्होंने षटखण्डागम के सूत्र ६३ वें की धवला टीका का पूरा उद्धरण दिया है और अर्थ भी किया है अन्त में यही लिखा है कि यह ६३ वां सूत्र द्रव्यस्त्री का ही विधान करता है और उसके पांच ही गुणस्थान होते हैं। इस से उन्होंने ६३ वें सूत्र में 'संजद' पद का सप्रमाण एवं सहेतुक खण्डन किया है। हम यहां अधिक उद्धरण देना व्यर्थ समझते हैं जिन्हें देखना होवे दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्पण द्वितीय भागमें सोनी जी का पूरा लेख पढ़ लेवें। हमने तो यहांपर कुछ उद्धरण देकर के सोनी जी की पूर्वापर विरुद्ध लेखनी और समझ का दिग्दर्शन करा दिया है। इससे पाठक सहज समझ लेंगे कि इस भावपक्षी विद्वानों का कोरा हठवाद कितना बढ़ा हुआ है।

वे सिद्धान्त शास्त्र और गोम्मटसार के प्रमाणों का पहले मन्वाराय के अनुकूल अर्थ करते थे अब वे उसके विरुद्ध अर्थ कर रहे हैं यह बात सोनी जी के दिये हुए उद्धरणों से हमने स्पष्ट कर दी है। इन विद्वानों को दिगम्बरत्व एवं सिद्धान्त—विघात की परवा (चिन्ता) नहीं है किन्तु इस समय उन्हें केवल अपनी बात की रक्षा की चिन्ता है। उनकी ऐसी समझ और विचार शैली का हो जाना खेदजनक बात है।

आगम के विषय में हठवाद क्यों?

श्रीमान प्रोफेसर हीरालाल जी एम० ए० ने जब द्रव्यस्त्री

मुक्ति आदि की बात प्रगट की थी. दिगम्बर धर्म के उस सर्वथा विपरीत बात का समाज के अनेक विद्वानों ने अपने लेखों वा ट्रैक्टों द्वारा खण्डन कर दिया है। विषय समाप्त हो चुका। प्रोफेसर साहब का अब भी मत कुछ भी हो परन्तु वे भी इन खण्डनों को देख कर चुप बैठ गये। परन्तु अब फिर नये रूप से वही द्रव्यस्त्री मुक्ति की सिद्धान्त शास्त्रों से सिद्धि की विपरीत बात पं० खूबचन्द जी द्वारा धवल सिद्धान्त में संजद पद जोड़कर तांबे में खुदवा देने से ही खड़ी हुई है, इस सम्बन्ध में आज प्रत्येक समाचार पत्र इसी मंतव्य की चर्चा से भरा रहता है। बम्बई में विद्वानों में परस्पर विचार विनिमय (लिखित शास्त्रार्थ) भी हो चुके हैं। आन्दोलन पर्याप्त बढ़ चुका है। परम पूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शान्ति सागरजी महाराज को इस विषय की चिन्ता खड़ी हो गई है। संजद' शब्द केवल तीन अक्षरों का है, उसके सूत्र में रखने या नहीं रखने में उतना ही प्रभाव पड़ेगा जितना मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के रहने नहीं रहने में पड़ता है। वे दोनों भी केवल तीन २ अक्षरों के ही हैं। संयत शब्द के जोड़ने पर द्रव्यस्त्री मुक्ति, की सिद्धि श्वेताम्बर मान्यता सिद्ध होती है, नहीं रखनेसे वह नहीं होती है। इसलिये उसके रखने का विरोध किया जा रहा है। सिद्धान्त-विघात नहीं हो यही विरोध का कारण है अन्यथा सिद्धान्त शास्त्रों की स्थायी रक्षा के लिये जो ताम्रपत्र पर लिखे जाने की योजना है वह सब व्यर्थ ही नहीं किन्तु विपरीत साधक होगी

विचार यहां इतना है कि संजद शब्द जो अब जोड़ा जा चुका है उसे हटा दिया जाय। उस पन्ने को गलवा कर दूसरा ताम्रपत्र खुदवाया जाय। परम पूज्य आचार्य महाराज के समक्ष जब पं० खूबचन्द जी से यह चर्चा हुई तब आचार्य महाराज को उन्होंने यह उत्तर दिया कि "यदि तांबे की प्रति से संजद शब्द निकाला जायगा तो मैं उसी दिन से उसके संशोधन का काम करना छोड़ दूंगा।" आचार्य महाराज को इस उत्तर से खेद भी हुआ और दो प्रकार की चिंता हो गई। यदि सञ्जद पद वाले पत्र को प्रति से हटा कर नष्ट कराया जाता है तो संशोधन का चालू काम रुकता है, और यदि सञ्जद शब्द जुड़ा रहता है तो मिथ्यात्व रूप द्रव्यस्त्री की मुक्ति की सिद्धि सिद्धांतशास्त्रों से सिद्ध होती है। महाराज यह भी कह चुके हैं कि विद्वान लोग अपनी जिद नहीं छोड़ते हैं। पं० खूबचन्द जी जब आचार्य महाराज को उपयुक्त उत्तर दे चुके हैं तब वे हमारी बात पर ध्यान देंगे यह कठिन है। फिर भी कर्तव्य के नाते हम उनसे दो शब्द कह देना चाहते हैं चाहे वे मानें या नहीं—

आप आगम के विषय में भी इतना हठ करते हैं कि यदि सञ्जद पद वाला पत्र हटाया गया तो मैं काम छोड़ दूंगा सो ऐसा हठ क्यों? आपके पास यदि ऐसे प्रबल प्रबल प्रमाण हैं जिनसे सञ्जद शब्द का रखना आवश्यक है तो उन्हें आज तक आपने क्यों प्रसिद्ध नहीं किया? दो वर्ष से यह चर्चा चल रही है आपने सञ्जद शब्द जोड़ा है, अतः मूल उत्तरदायित्व आप पर ही है।

आपको अपना सप्रमाण वक्तव्य प्रसिद्ध करना परमावश्यक था, परन्तु दूसरे विद्वान तो कुछ लिखते भी हैं, आप सर्वथा चुप हैं और काम छोड़ देने की धमकी दे रहे हैं। ऐसी धमकी तो आगम के विषय में कोई निस्पृह श्रम करने वाला भी नहीं दे सकता है। आपका कर्तव्य तो यही होना चाहिये कि आप स्वयं महाराज की सेवा में यह प्रार्थना करें कि संजद शब्द पर जो विवाद समाज में खड़ा हो गया है उसे आप दूर कर दीजिये और शास्त्राधार से जो निर्णय आप देंगे उसे मानने में हमें कोई आपत्ति नहीं होगी। ऐसा कहने से आपकी बात जाती नहीं है किन्तु सरलता प्रगट होगी। विद्वत्ता का उपयोग और महत्व हठ में नहीं किन्तु आगम की रक्षा में है।

आचार्य महाराज पूर्ण समदर्शी उद्भट विद्वान, सिद्धांत शास्त्र के रहस्यज्ञ एवं निश्चय सम्यग्दृष्टि हैं, वीतराग महर्षि हैं। अतः वे जो निर्णय देंगे आगम के अनुसार ही देंगे, आपको महाराज के निर्णय में किसी प्रकार की आशङ्का भी नहीं करना चाहिये। जैसा कि—पं० वंशीधर जी ने "यदि आचार्य शांतिसागर जी संजद पद के विरुद्ध निर्णय देंगे तो दूसरे आचार्य दूसरा निर्णय देंगे तो किसका मान्य होगा" ऐसी सर्वथा अनुचित एवं अग्राह्य बात रखकर अपनी आशङ्का रखकर मनोवृत्ति का परिचय दिया है। आप विवेक से काम लेवें और अपने बड़े भाई के समान कोई बात नहीं कहकर इस विवाद को मिटाने एवं आगम की रक्षा करने में परम पूज्य आचार्य महाराज से ही निर्णय मांगें तथा

उनके दिये गये निर्णय को शिरोधार्य करें। काम छोड़ने की बात छोड़ देवें। यदि पं० खूबचन्द जी हमारे समयोचित एवं वस्तु-पथ प्रदर्शक शब्दों पर विचार करेंगे तो अच्छी बात है क्योंकि उनकी बात की रक्षा से आगम की रक्षा बहुत बड़ी एवं दिगम्बरत्व की मूल भित्ति है। उसके सामने वे अपनी बात की रक्षा चाहें यह न तो विवेक है और न ऐसा हो सकता है।

आगम में बहुमत भी मान्य नहीं हो सकता है।

कतिपय व्यक्तियों के मतों को प्रसिद्ध करना एवं किसी सामुदायिक शक्ति के मत को चाहना, ये सब बातें भी निःसार हैं। आगम के विषय में बहुमत का कोई मूल्य नहीं है। उसमें तो आचार्यवचन ही मान्य होते हैं। अतः व्यक्ति समुदाय का बहुमत संजद पद के बारे में बताना व्यर्थ है। जैसे यह बात व्यर्थ है उसी प्रकार यह बात भी व्यर्थ एवं सारहीन है कि आ० महाराज को इस संजद पद के झगड़े में नहीं पड़ना चाहिये। ऐसे झगड़े तो गृहस्थों के लिये ही उपयुक्त एवं अधिकृत बात है। साधुओं को इन विवाद की बातों से क्या प्रयोजन है? फिर पण्डितों का मत भेद है। वे ही आपस में संजद पद के रखने, नहीं रखने का निर्णय करें, या भा० दि० जैन महा सभा इस मामले को निबटा सकती है? आदि जो बातें सुनी जाती हैं वे सब भी व्यर्थ एवं प्रलाप सरीखी हैं क्योंकि वह वस्तु स्वरूप से विपरीत सलाह है।

निर्णय देने के आचार्य महाराज ही अधिकारी हैं।

संजद पद का विवाद सिद्धांत शास्त्र सम्बन्धी है, अतः इसके निर्णय का अधिकार परमपूज्य चारित्र चक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य शांतिसागर जी महाराज को ही है। कारण कि वे वर्तमान के समस्त साधुगण एवं आचार्य पद धारियों में सर्वोपरि शिरोमणि हैं, इस बात को हम ही अकेले नहीं कहते हैं किन्तु समस्त विद्वत्समाज, धनिक समाज एवं समस्त साधुवर्ग भी एक मत से कहता है। उनका विशिष्ट तपोबल, अगाध पाण्डित्य, असाधारण विवेक, परमशांति, सिद्धांत शास्त्र रहस्यज्ञता, एवं सर्वोपरि प्रभाव जैसा उनमें है वैसा वर्तमान साधु और दूसरे आचार्यों में नहीं है। यह एक प्रत्यक्ष सिद्ध निर्णीत बात है अतः अधिक कुछ भी इस विषय में नहीं लिखकर हम इतना ही लिख देना पर्याप्त समझते हैं कि आचार्य शांतिसागर जी महाराज इस समय के श्री भगवत्कुन्दकुन्द स्वामी हैं। अतः संजद पद का निर्णय देने के लिये परम आचार्य शांतिसागर जी महाराज ही एक मात्र अधिकारी हैं। उनका दिया हुआ निर्णय आगम के अनुसार ही होगा।

दूसरे—यह कोई लौकिक व्यवहार सम्बन्धी बात नहीं है, लेन देन आदि का कोई आपसी झगड़ा नहीं है, जिसका निर्णय गृहस्थ करें, और आचार्य महाराज बीच में नहीं पड़ें किन्तु यह केवल शास्त्र सम्बन्धी निर्णय है। उसमें भी धवल सिद्धांत के सूत्र पर निर्णय देना है। गृहस्थों को तो उस सिद्धांत शास्त्र के पढ़ने का भी अधिकार नहीं है अतः वे तो इसका निर्णय देने के

अधिकारी ही नहीं ठहरते हैं। अस्तु।

आचार्य महाराज की सेवा में निवेदन

इस ग्रन्थ को समाप्त करने से पहले हम विश्ववन्द्य पूज्यपाद चारित्रचक्रवर्ती श्री १०८ आचार्य महाराजकी सेवामें यह निवेदन कर देना चाहते हैं कि यदि आप सूत्र में संजद पद के रहने से सिद्धान्त का घात समझते हैं तब तो आपके आदेश से आपके तत्वावधानमें बनी हुई ताम्रपत्र कमेटी को सूचित कर तुरन्त ही उस ताम्रपत्र को अलग करा देवें जिसमें वह संजद पद खुदवा दिया गया है। यदि आपकी ऐसी इच्छा है कि 'संजद पद का निकालना आवश्यक है फिर भी अभी चलता हुआ काम न रुक जाय, इस लिये काम पूरा होने पर कुछ वर्ष पीछे उसे हटा दिया जायगा' तब हमारा यह नम्र निवेदन आपके चरणोंमें है कि ऐसा विलंब किसी प्रकार भी उचित एवं सह्य होने की बात नहीं है। कारण एक सिद्धान्त विपरीत मिथ्या बात किसी की भूल से यदि परमागम में शामिल कर दी गई है तब उसे जानते हुए भी रहने देने में जनता की श्रद्धा में वैपरीत्य होने की सम्भावना है। इतने आन्दोलन, विचार संघर्ष और सप्रमाण खण्डन करनेके पीछे भी यदि अभी वह पद जुड़ा रहा तो फिर जनता की समझ एवं संस्कार संदिग्ध कोटि में हुए बिना नहीं रहेंगे। लम्बा काल होने से फिर अधिक दलबन्दी का रूप खड़ा हो जाने से उसका हटाना भी दुःसाध्य होगा। और लोगों को ऐसा विचार भी होगा कि यदि संजद पद आगमबाधित एवं विपरीत सिद्धान्त का

पोषक है तो उसे उस समय क्यों नहीं हटाया गया जब उस पर भारी आंदोलन उठा था, क्या तब महाराज को जानकारी नहीं थी, यदि थी तो यह सुधार उसी समय करना था अब क्यों ? फिर लम्बा काल होने से ऐसी बातें भी खड़ी हो सकती हैं जिनके कारण फिर संजद शब्द को हटाना सर्वथा अशक्य हो जायगा। वैसी अवस्था में प्रोफेसर साहब का वह मन्तव्य कि "सिद्धान्त शास्त्र से द्रव्यस्त्री की मुक्ति एवं श्वेताम्बर मत मान्यता अनिवार्य सिद्ध होती है" स्थायी हो जायगा।

काम चलने के प्रलोभन से एक सिद्धांत-विपरीत बात परम-आगम में लम्बे समय तक रहने दी जाय यह भी तो ठीक नहीं है। चाहे काम हो चाहे वह रुक जाय परन्तु सिद्धांत विरुद्ध पद मूल सूत्र से तुरंत हटा देना ही न्यायोचित एवं प्रथम कर्तव्य है। हमारी तो ऐसी समझ है। हमारे उपर्युक्त हेतुओं एवं सम्भावित बातों पर महाराज ध्यान देंगे ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना है।

काम चलने के सम्बन्ध में हमारा यह कहना है कि वर्तमान में जिस रूप में काम चल रहा है वह बराबर चलता रहेगा ऐसी हमें आशा है। यदि त्रिगुणित श्रमफल देने पर भी मन्थ सुधार-णा से काम रुक जायगा तो फिर भी महाराज के आदेश एवं उनकी परमागम रक्षा की सदिच्छा से होने वाले इस पवित्र कार्य में कोई बाधा नहीं आ सकेगी। प्रत्युत निस्पृहवृत्ति से बिना कुछ भी श्रम फल लिये इस स्तुत्य परमार्थ कार्य को करने वाले भी अनेक विद्वान तैयार हो जांयगे, महाराजको यशस्वरूप धवलसिद्धांत

शास्त्र के जीर्णोद्धार कार्य में कोई चिंता का सामना नहीं करना पड़ेगा ऐसा भी हमें भरोसा है। परन्तु कार्य का प्रलोभन सिद्धांत विघात को सहन करा देवे यह बात भले ही थोड़े समय के लिये हो तो भी वह अनुचित एवं अग्राह्य है। जैसे अनेक दिनों का उपोषित एवं क्षीण शरीर का धारी अत्यन्त अशक्त साधु भी बिना नवधाभक्ति एवं निरन्तराय शुद्धि समेक्षण के कभी भोजन ग्रहण नहीं कर सकता है। उसी प्रकार कोई भी परमागम श्रद्धानी, उस में सामिल की गई सिद्धांत विपरीत बात को अथवा लगे हुये अवर्णवाद को बिना दूर किये कभी चुप नहीं बैठ सकता है। इस समस्या पर ध्यान दिलाते हुये हम चारित्र चक्रवर्ती परम पूज्य श्री १०८ आचार्य महाराज के चरणों में यह निवेदन करते हैं कि वे शीघ्र ही ऐसी समुचित व्यवस्था कराने का ताम्रपत्र निर्मापक कमेटी को आदेश देवें जिससे दिगम्बरत्व एव परमागम सिद्धांत शास्त्र की रक्षा अक्षुण्ण बनी रहे। बस इतना ही सदुद्देश्य हमारा इस ग्रन्थ रचना का है।

—ग्रन्थ नाम और उसका उपयोग—

इसका नाम हमने 'सिद्धांत सूत्र समन्वय' रक्खा है। वह इसलिये रक्खा है कि इस निबन्ध रचना से 'संजद' पद ९३वें सूत्र में सर्वथा नहीं है यह निर्णय तो भली भांति हो ही जाता है। साथ ही इस षटखण्डागम में केवल भाववेद ही नहीं है, उसमें द्रव्यवेद का निरूपण भी है, आदि की चार मार्गणाओं का विवेचन वेदादि मार्गणाओं से सर्वथा भिन्न है योग मार्गणा का

सम्बन्ध पर्याप्ति के साथ अविनाभावी है आलापाधिकार का निरूपण पर्याप्त अपर्याप्त की अपेक्षा से है अतः वहां द्रव्य भाव दोनं वेदों का यथा सम्भव समन्वय किया है। इत्यादि सभी विशे दृष्टिकोण भी इस रचना से सहज समझ में आ जांयगे। अत इस रचना को ट्रैक्ट नहीं समझना चाहिये, किन्तु सिद्धांत शास्त्र में सूचित किये गये सूत्रों का गुणस्थान मार्गणाओं में यथायोग्य समन्वय समझने के लिये अथवा षटखण्डागम सिद्धांत शास्त्र का रहस्य समझने के लिये एक उपयोगी ग्रन्थ समझना चाहिये। इसीलिये इस ग्रन्थ का नाम "सिद्धांत सूत्र समन्वय" यह यथार्थ रक्खा गया है।

यद्यपि ग्रन्थ रचना अधिक विस्तृत एवं बड़ी है। साथ ही षटखण्डागम-सिद्धांत शास्त्र जैसे महान गम्भीर परमागम के सूत्रों का विवेचन होने से यह भी गम्भीर एवं क्लिष्ट है। फिर भी इसे सरल बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। इसलिये उपयोग विशेष लगाने से सर्व साधारण भी इसे समझ सकेंगे। विद्वानों के लिये तो कुछ कहना ही नहीं है। वे तो इसका पर्यालोचन करेंगे ही। हमारा उन स्वाध्यायशील महानुभावों से विशेष कर गोम्मटसार की हिन्दी टीका का मनन करने वाले सज्जनों से भी निवेदन है कि वे विशेष उपयोग पूर्वक इस ग्रन्थ का एक बार आद्योपांत (पूरा) स्वाध्याय अवश्य करें।

॥ अन्त्य मङ्गल ॥

श्रीमच्छ्रीधरसेनसूरिरवतादंगैकदेशप्रभुः,
तच्छिष्यावपि तत्समानभवतां सिद्धांतपारंगतौ ।
षट्खण्डागमनामकं सुरचितं ताभ्यां महाशास्त्रकम्,
जीयाच्चन्द्रदिवाकराविव सदा सिद्धांतशास्त्रं भुवि ॥
सीतारामसुतेनासौ लालारामानुजेन च ।
प्रबन्धो रचितः श्रेयान् मक्खनलालशास्त्रिणा ॥

शुभंभूयात् ।

समाप्त